मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में स्त्री

(WOMEN IN NOVELS OF MRINAL PANDE)

एम. फिल. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध

शोध–निर्देशक
प्रो. नामवर सिंह

सह शोध–निर्देशक
प्रो. रामबक्ष

शोधार्थी
स्तुति राय

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

2013

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERISTY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature & Culture Studies
New Delhi- 110067

Date: 26/07/2013

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitled '**MRINAL PANDE KE UPANYASON MEIN STREE' (Women in the novels of Mrinal Pande)** submitted by me is an original research work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

स्तुति राय
STUTI RAI
(Research Scholar)

Prof. NAMWAR SINGH
(Supervisor)
(CIL/ SLL & CS/ JNU)

Rambux
Prof. RAMBUX
(Chairperson)
(CIL/ SLL & CS/ JNU)

Rambux
Prof. RAMBUX
(Co-Supervisor)
(CIL/ SLL & CS/ JNU)

GRAM JAYENU TEL : (91-011)26717676, 26717557 Extn : 4217,(D) 26704217, Fax : (91-011)26717603,26717586

मम्मी, बाबा को सादर समर्पित...

अनुक्रम

भूमिका i-iii

अध्याय प्रथम 1-23

मृणाल पाण्डे का जीवन–परिचय एवं साहित्य लेखन

अध्याय द्वितीय 24-49

'पटरंगपुर पुराण' : पहाड़ी जन–जीवन और स्त्री

अध्याय तृतीय 50-73

'अपनी गवाही' : पत्रकारिता जगत और स्त्री

अध्याय चतुर्थ 74-91

स्त्री अस्मिता के प्रश्न

उपसंहार 92-96

ग्रन्थानुक्रमणिका 97-108

भूमिका

वर्तमान समय में साहित्य में स्त्री लेखन अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। अब यह इतना विस्तार पा चुका है कि इसने साहित्य में स्त्रियों की उपस्थिति को पुरूष रचनाकारों के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। स्त्री रचनाकारों ने साहित्य में स्त्री जीवन से सम्बन्धित विविध अनुभवों और पहलुओं को जिस तरह से अपने कृतित्व में उभारा है वह स्त्री जीवन पर नए सिरे से विचार–विमर्श के लिए हमें पर्याप्त जगह उपलब्ध कराता है। इनकी रचनाओं में नए अनुभव, नई कल्पनाएं और नई भाषा की प्रस्तुति ने एक अलग सौन्दर्यशास्त्र रचकर उसे साहित्येतिहास में अलग मुकाम पर पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्त्री लेखन के प्रति मै शुरू से ही आकर्षित थी और शोध कार्य के लिए इसी से सम्बन्धित कोई विषय चुनना चाहती थी। अतः जब मैंने अपने शोध निर्देशक प्रोफेसर नामवर सिंह से इस क्षेत्र में काम करने की अपनी रूचि के बारे में बताया तो वह तुरन्त राजी हो गये और उन्होंने ही इसके लिए मृणाल पाण्डे का नाम भी सुझाया। इस तरह इस विषय का चुनाव हो गया।

एक नई लेखिका को पढ़ने और उस पर शोध कार्य करने के प्रति मैं बहुत उत्साहित थी क्योंकि इससे पहले मैं मृणाल पाण्डे के साहित्य से परिचित नहीं थी। जब मैंने उन्हें पढ़ना शुरू किया तब मुझे यह अनुभव हुआ कि स्त्री विमर्श की सैद्धान्तिकी पर मृणाल पाण्डे ने जैसा काम किया है वह काफी विचारोत्तेजक और पठनीय है। जहाँ उनकी समकालीन स्त्री लेखिकाओं ने उच्च–मध्यवर्गीय स्त्री को अपने अध्ययन–विश्लेषण का केन्द्र बनाया है वहीं मृणाल पाण्डे ने निम्नवर्गीय ग्रामीण स्त्री को अपने अध्ययन के केन्द्र बिन्दु के रूप में रखा है जिनकी समस्याओं की तरफ दूसरों की निगाहें कम ही पड़ती हैं। दरअसल भारतीय ग्रामीण स्त्रियों पर गम्भीरतापूर्वक काम करने के लिए उन तक पहुँचना और तथ्य जुटाना चुनौतीपूर्ण और लम्बी अवधि का

काम है। मृणाल पाण्डे ने यह काम सफलतापूर्वक किया है और इसमें उनके पत्रकारिता के अनुभव का विशेष योगदान है क्योंकि इसकी सहायता से तथ्य जुटाना उनके लिए कोई मुश्किल कार्य नहीं था। अपने इन्हीं अनुभवों को इन्होंने साहित्यिक कृतियों में भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। हालांकि निम्न–मध्यवर्गीय स्त्रियां उनके उपन्यासों का केन्द्र नहीं बन पाई हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए मैंने मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में से दो उपन्यासों को आधार ग्रन्थ के रूप में चुना है। ये दो उपन्यास 'पटरंगपुर पुराण 'और 'अपनी गवाही' हैं। दोनों ही उपन्यासों की केन्द्रीय विषयवस्तु स्त्री जीवन है। अलग–अलग समयान्तराल में स्त्रियों की सामाजिक–आर्थिक–पारिवारिक स्थिति की वास्तविक अभिव्यक्ति इन उपन्यासों हुई है। सम्पूर्ण शोध–कार्य को मैंने चार अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय मृणाल पाण्डे के जीवन–परिचय और उनके साहित्यिक लेखन पर आधारित है। दूसरा अध्याय 'पटरंगपुर पुराण : पहाड़ी जन–जीवन और स्त्री' है। तीसरा अध्याय 'अपनी गवाही': पत्रकारिता जगत और स्त्री' तथा चौथा अध्याय 'स्त्री अस्मिता के प्रश्न' से सम्बन्धित हैं। सभी अध्यायों में मैंने भारतीय समाज में स्त्री के जीवन की विविध दशाओं का चरित्रों के माध्यम से मूल्यांकन करने की कोशिश की हैं। यह देखने का प्रयास किया है कि भारतीय समाज में आये बदलाव ने स्त्री के जीवन को किस तरह से बदला है।

शोध–कार्य को पूरा करने में जिन लोगों का आशीर्वाद और सहयोग मिला उन सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना मेरा परम कर्तव्य है। परिवार के सहयोग के बिना यह कत्तई संभव नहीं था। मम्मी, बाबा और भाइयों को धन्यवाद दूँ यह शोभा नहीं देता, वह जीवन में अनुकरणीय हैं। भाभियों और भतीजे–भतीजियों ने खूब उत्साह बढ़ाया जिससे यह कार्य थोड़ा आसान हो गया।

शोध–निर्देशक प्रोफेसर नामवर सिंह और सह शोध–निर्देशक प्रोफेसर रामबक्ष का निर्देशन मेरे लिए ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणादायी रहा। दोनों गुरूजनों ने यत्नपूर्वक मेरी भाषा को सुधारा और इसके प्रति मुझे जागरूक किया। गुरूदेव नामवर सिंह ने स्त्री सम्बन्धी मुद्दों पर अपना मत रखकर मेरे दृष्टिकोण को अधिक व्यापक बनाने में बहुत

मदद की। प्रो.रामबक्ष अपने अनुभवजन्य उदाहरणों को सामने रखकर मुझे अक्सर कुरेदते रहते थे जिससे मैं उन चीजों पर भी सोचने के लिए विवश हो जाती थी जिस पर मैं सोच नहीं पाती थी या जिन पर मेरी दृष्टि नहीं जा पाती थी। दोनों गुरूजनों को सादर प्रणाम और कोटि–कोटि धन्यवाद।

भारतीय भाषा केन्द्र के डॉ. गंगा सहाय मीणा छात्र–छात्राओं की हरसंभव मदद करने में सदैव तत्पर रहते हैं। उन्होंने मेरी भी मदद की। अतः उन्हें हार्दिक धन्यवाद।

हमारे संस्थान के ही श्री हादी जी, मेरे मित्र धीरज जी, मनीष जी, आरती दीदी, बिनीता, सोनाली, रूममेट मीनाक्षी दीदी और छोटे भाई समान दिबाकर का अपूर्व सहयोग मुझे समय–समय पर मिलता रहा, अतः आप सभी को धन्यवाद। सन्ध्या दीदी और उनके पति डॉ. जी. एन. कर्ण का आशीर्वाद और सहयोग मुझे बराबर मिला इसके लिए मैं उन दोनों की तहेदिल से शुक्रगुजार हूँ।

टाइपिंग के लिए अशोकजी, वीरेन्द्र और पूनम को बहुत–बहुत धन्यवाद।

गाँव की सहेलियाँ किरन, सखी, श्वेता और प्रियंका की आभारी हूँ जिन्होंने सदैव मेरा उत्साहवर्द्धन किया।

...और अंत में उन सभी को धन्यवाद जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शोध कार्य में मेरी मदद की।

स्तुति राय

भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

दिनांक :

अध्याय प्रथम

मृणाल पाण्डे का जीवन–परिचय एवं साहित्य लेखन

अध्याय प्रथम

मृणाल पाण्डे : जीवन–परिचय एवं साहित्य लेखन

मृणाल पाण्डे का जन्म 26 जनवरी 1946 को टीकमगढ़, मध्य प्रदेश में हुआ था। मां शिवानी हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका और पिता प्रशासनिक अधिकारी थे। मां की वज़ह से शुरू से ही घर में इन्हें साहित्यिक वातावरण देखने को मिला था जिससे साहित्य में रुचि बचपन में ही पैदा हो गई थी। मां शिवानी ने अपनी पुत्रियों की शिक्षा का महत्त्व समझते हुए इन्हें घरेलू काम–काज से मुक्त रखा तथा इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। शिक्षा को लेकर अपनी मां की अतिरिक्त सजगता को याद करते हुए 'देवी' नामक पुस्तक में मृणाल पाण्डे लिखती हैं –

> "यह मां का ही ज़हूरा था कि हम, उसकी बेटियाँ घरेलू तर्ज़ की सिलाई–बुनाई सीखने की बजाए अपना समय पढ़ाई–लिखाई, संगीत और साहित्य की साधना में बिता सकीं।....मुझे जहाँ तक याद पड़ता है, मां की हमारे पठन–पाठन को लेकर व्यग्रता और उत्सुक निगरानी हमें अक्सर उकताहत या चिड़चिड़ाहट से भर देते थे। लेकिन आज हम बहनें उसके उस दुर्लभ उपहार के ही मार्फ़त अपने व्यक्तित्व में दैवत्व के उसी अग्नि–स्फुल्लिंग का स्पर्श महसूस करती हैं।"[1]

घर में पढ़ाई–लिखाई का उपयुक्त माहौल पाकर इन्होंने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कदम रखा। अंग्रेजी विषय से प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से एम.ए. किया। संगीत एवं चित्रकला में भी इनकी गहरी रुचि थी अतः प्रसिद्ध गांधर्व विश्वविद्यालय से 1979 में 'संगीत विशारद' की उपाधि ली। पुनः कॉरकोरन स्कूल ऑफ आर्ट, वाशिंगटन में चित्रकला तथा डिजाइनिंग का विधिवत अध्ययन किया।

अध्यापन – मृणाल पाण्डे ने देश–विदेश के कई कॉलेजों में अध्यापन किया। अपने कैरियर के शुरूआती चरण में इन्होंने मध्य प्रदेश के कई कॉलेजों में पढ़ाया फिर कुछ

---

[1] मृणाल पाण्डे,देवी,राधाकृष्ण प्रकाशन,पृ.सं.18

समय तक अमेरिका व यूरोप के कॉलेजों में अध्यापन किया। तत्पश्चात् नई दिल्ली के 'जीसस एण्ड मेरी' कॉलेज में अंग्रेजी की अध्यापिका रहीं। अध्यापन के समय ही धीरे–धीरे इनका झुकाव पत्रकारिता की तरह बढ़ता चला गया और फिर इन्होंने अध्यापन छोड़ पत्रकारिता का पेशा ही अपना लिया।

सर्वप्रथम 1984 ई. में Times of India संस्थान की पत्रिका 'वामा' से इनकी सम्पादकीय जीवन की शुरूआत हुई जिसका इन्होंने जून 1987 तक सम्पादन किया। पुनः 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' तथा 'दैनिक हिन्दुस्तान' की कार्यकारी संपादक का पद संभाला। बाद में 'दैनिक हिन्दुस्तान' की सम्पादक भी बनीं। इसके साथ ही साथ NDTV तथा दूरदर्शन पर हिंदी समाचार बुलेटिन का भी सम्पादन किया। अब तक मृणाल पाण्डे पत्रकारिता जगत में पूरी तरह से स्थापित हो चुकी थीं।

पत्रकारिता के साथ ही साथ मृणाल पाण्डे साहित्य के क्षेत्र में भी सक्रिय हो चुकी थीं। साहित्यिक क्षेत्र में इनका पदार्पण 1967 ई. में हुआ। 1967 ई. में इनकी पहली कहानी 'कोहरा और मछलियाँ' उस समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई। इनका पहला उपन्यास 'विरुद्ध' 1977 ई. में प्रकाशित हुआ। अपने इसी उपन्यास में इन्होंने भारतीय स्त्री की समस्याओं को केन्द्र में रखकर अपने स्त्रीवादी नजरिए का परिचय दिया। उपन्यास और कहानियों के अलावा इन्होंने नाटक, रिपोर्ताज, निबंध एवं आलोचनात्मक/विश्लेषणात्मक पुस्तकें भी लिखी हैं। इन सभी में स्त्रियों के प्रति इनका अपना एक खास दृष्टिकोण नज़र आता है और इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह केवल काल्पनिक नहीं है अपितु प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। भारत सरकार द्वारा कामगार महिलाओं की स्थिति के अध्ययनार्थ गठित एक आयोग की सदस्या के रूप में इन्होंने ग्रामीण भारत का दौरा करके स्त्रियों की दशा का अध्ययन किया था जिसका पूरा ब्यौरा इनकी एक पुस्तक 'ओ अब्बीरी' में है। हिंदी साहित्य में यह ऐसी एकमात्र पुस्तक है जिसमें भारतीय स्त्री के प्रजनन एवं स्वास्थ्य का आलोचनात्मक अध्ययन है। भारतीय स्त्री की वास्तविक स्थिति का जैसा वर्णन इनके यहाँ है वैसा इनके समकालीनों में दुर्लभ है।

कृतियाँ

उपन्यास – विरुद्ध (1977), पटरंगपुर पुराण (1983), देवी (1999), रास्तों पर भटकते हुए (2000), हमका दियो परदेस (2001), अपनी गवाही (2003)।

नाटक – मौजूदा हालात को देखते हुए (1981), जो राम रचि राखा (1981, 83), आदमी जो मछुआरा नहीं था (1985), काजर की कोठरी (1985), चोर निकल के भागा (1995) और काजर की कोठरी (देवकीनन्दन खत्री का उपन्यास) का नाट्य रूपान्तरण।

कहानियाँ– दरम्यान (1977), शब्दबेधी (1980), एक नीच ट्रेजिडी (1981), एक स्त्री का विदागीत (1985) बचुली चौकीदारिन की कढ़ी (1990), यानी की एक बात थी (1990), चार दिन की जवानी तेरी (1995)

निबंध संग्रह– स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक (1987), परिधि पर स्त्री (1996) ओ उब्बीरी (स्वास्थ्य) 2003 (WHO के लिए)

संपादन– बंद गलियों के विरुद्ध (क्षमा शर्मा के साथ) महिला पत्रकारिता की यात्रा)

अंग्रेजी लेखन–The subject is women (महिला विषयक लेखों का संकलन), My own witness, The daughter's daughter उपन्यास, दोनों का क्रमशः 'अपनी गवाही' और हमका दियो परदेस' नाम से हिन्दी अनुवाद, Steping out : life and sexuality in rural India.

उपन्यास – इनके 5 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। पहला उपन्यास 'विरुद्ध' (1977) ई. में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् पटरंगपुर पुराण (1983), रास्तों पर भटकते हुए (2000), हमका दियो परदेस (2001) और अपनी गवाही (2003) में प्रकाशित हुए हैं।[2] उपन्यास के क्रम में एक अन्य पुस्तक 'देवी'[3] भी है जिसके कथानक और शैली को

---

[2] सभी पुस्तकों में दिए गये प्रथम प्रकाशन वर्ष के आधार पर

[3] मृणाल पांडे, 'देवी' राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999

देखकर औपन्यासिक गठन में आत्मकथा, संस्मरण–रिपोर्ताज सभी के तत्त्व मिलते–जुलते से प्रतीत होते हैं।[4] अतः इस पुस्तक की चर्चा भी उपन्यास के अन्तर्गत ही होगी। पहला उपन्यास 'विरुद्ध' मृणाल पाण्डे का स्त्री संघर्ष को प्रमुखता के साथ उठाने वाला एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें की स्त्री पात्र अपने स्त्री होने की नियति को चुनौती देते हुए उसके विरुद्ध खड़ी होती है। समाज की लिंगभेदी मानसिकता ने स्त्री के आत्मसम्मान और आत्मनिर्भर बनने की दिशा में काफी रोड़ा अटकाया है अतः इसके विरुद्ध स्वयं स्त्री को खड़ा होना पड़ेगा, यही इस उपन्यास का मूल कथ्य है।

'देवी' : (समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की)

विशुद्ध कथापरक उपन्यास से इतर यह पुस्तक आदि–अनादि काल से मौजूद स्त्री पात्रों (जो वर्तमान में मिथक के रूप में प्रचलित हैं) और आज के समय की उन सभी स्त्री पात्रों जिन्होंने भारत की स्त्रियों के हृदय को किसी–न–किसी रूप में झकझोरा है उन्हीं को एक साथ रखकर परखने की एक कोशिश करती है। भारतीय धर्म में एक महत्त्वपूर्ण स्थान देवियों का भी है जिन्होंने स्वयं भी सर्वशक्तिशाली होते हुए भी स्त्री होने का खामियाजा भुगता है। उन्होंने इस देश की औरतों को अन्याय झेलने की एक अदम्य शक्ति उन्हें प्रदान की है। जिसके बल पर स्त्रियों ने सारा दमन अपने उपर झेलकर भी इस देश की सभ्यता को जीवित रखा है।

देवी के माध्यम से लेखिका ने अपने पारिवारिक जीवन और अपने घर की महत्त्वपूर्ण स्त्रियों को याद किया जिसमें उनकी नानी, मां शिवानी और बड़ी अम्मा (ललिता मौसी) महत्त्वपूर्ण हैं। अपनी मां को वह विशेष तौर से याद करती हैं जिन्होंने उन्हें ज्ञान की वह ज्योति दिखाई जिसमें उनके जीवन का रास्ता साफ नज़र आता था। इसमें लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा, सरस्वती जैसे मिथकीय पात्रों को लेखिका ने आधुनिक दृष्टि से देखा है और इसी के समानान्तर इन देवियों की विशेषताओं से युक्त वर्तमान समय की महत्त्वपूर्ण नारियों यथा मेधा पाटकर, मायावती, जयललिता, मेनका गांधी की उपलब्धियों की चर्चा करती हैं और भी, उन साधारण स्त्रियों को भी जिन्होंने स्त्री होने

---

[4] इसके संदर्भ में देखे उपन्यास का फ्लैप

की सीमा को तोड़कर कुछ अलग करने की कोशिश की है। पत्रकारिता का पेशा उन्हें ऐसे आंकड़ों को खोज–बीन कर उन्हें इस्तेमाल करने की सुविधा से उन्हें लैस करता है।

रास्तों पर भटकते हुए –

इसका प्रकाशन सन् 2000 में हुआ था। इसमें कथानायिका मंजरी के संघर्ष को दिखाया गया है। बाहरी समाज का भ्रष्टाचार, राजनीति और सत्ता का गठबंधन और उसके साथ जुड़े अन्य निकायों की रहस्यमयी पर्तें हैं और इन सबके बीच में एक स्त्री का संसार है। मंजरी एक तलाकशुदा अकेली स्त्री है। वह अकेले एक बड़े शहर में रहती है और पेशे से पत्रकार है। वह लगातार एक के बाद एक कठिनाइयों से जूझती–टकराती है, छलनी होती है लेकिन हार नहीं मानती।

आर्थिक निर्भरता की तलाश में अपनी ज़मीन पुख्ता करने की कोशिश करती मंजरी के सूने जीवन में कब एक बच्चे का प्रवेश हो जाता है वह यह समझ ही नहीं पाती। उससे अपने सुख–दुःख का साझा करता वह बच्चा उसकी जिंदगी में अपनी एक ख़ास जगह बना लेता है। लेकिन जिंदगी में झंझावात तब पैदा होता है जब बंटी रहस्यमय तरीके से गायब हो जाता है। उसकी मां से सुराग लेती मंजरी को तब और धक्का लगता है जब पार्वती की भी रहस्यमय मृत्यु हो जाती है। वह बंटी और उसकी मां की मृत्यु की तफ्तीश करने निकल पड़ती है। मंजरी को हैरानी तब होती है जब उसके द्वारा उनकी मृत्यु की जांच–पड़ताल न करने के लिए उसके पास अज्ञात फोन आने लगते हैं।

बंटी और उसकी मां की मृत्यु की तफ्तीश करती मंजरी को धीरे–धीरे इसके पीछे के गंभीर षड्यंत्र की बू नज़र आने लगती है जिसमें राजनेता से लेकर शहर के एक बड़े अस्पताल से इस घटना के सूत्र उसे जुड़े नज़र आते हैं। इस खेल में मीडिया के लोग भी शामिल होते हैं।

अपनी ओर से गंभीर कोशिश करने के बावजूद उसे हर तरफ से निराशा ही हाथ लगती है क्योंकि हत्या के संबंध में कोई भी अपना मुँह नहीं खोलना चाहता। उसके घर में बंटी का रखा एक बैग मिलता है जिसमें उसे एक महत्त्वपूर्ण सुराग

मिलता है और सारी घटनाएँ उसके सामने खुलने लगती है। धीरे–धीरे वह सबूत इकट्‌ठा करने के लिए तत्पर होती है। उसे धमकियाँ मिलती हैं लेकिन वह नहीं चाहती कि वह इस मामले से पीछे हटे। वह दृढ़प्रतिज्ञ होती है कि वह बंटी और उसकी मां की हत्या के राज से पर्दा हटा कर रहेगी।

हमका दियो परदेस (2001) –

यह उनके अंग्रेजी में लिखे उपन्यास 'द डॉटर्स डॉटर' का हिंदी अनुवाद है। यह उपन्यास एक समय से पहले ही परिपक्व हो चुकी लड़की की जुबानी उसके और उसके परिवार की कहानी है जिसमें वह अपनी तरफ से अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को समझने–बूझने की कोशिश करती है। उसके अपने परिवार में प्रत्येक सदस्य की चारित्रिक विशेषता पहाड़ी इलाके के सर्द मौसम की भाँति एक उदास ठंडेपन से संचालित है। यह ठंडापन तब पिघलता है जब सभी बच्चे अपनी मां के साथ अपने ननिहाल में मैदानों में जाते हैं। वहाँ उसकी मामी के बच्चे अक्सर उन्हें यह एहसास दिलाते रहते हैं कि वे उसकी बुआ की बेटियाँ हैं अर्थात् घर की बेटी की बेटियाँ। अपने घर में वे बच्चे भी अपने–आप को मालिक समझते हैं और अपने घर की हर चीज पर अपना हक़ जताते रहते हैं। उनका अपने घर को लेकर मालिकाना भाव इतना ज्यादा होता है कि वे जिस चीज को चाहते हैं वह उन्हें तुरंत ही मिल जाती है जबकि बेटी भी बेटियों को नही।

कहानी में अदने से मोर के लिए बच्चों में जंग छिड़ जाती है और चूंकि वे बेटी की बेटियाँ हैं इसीलिए उन्हें उस मोर को घर के बड़े लोगों के दबाव में उन्हीं वापस लौटानी पड़ती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पूरी की पूरी झलक इस उपन्यास के पृष्ठ–दर–पृष्ठ मौजूद है। बेटे की चाहत, पति–पत्नी के रिश्तों में ठंडापन, संबंधों का जबरदस्ती निर्बाह इस उपन्यास में एक छोटी बच्ची के विकास पर कैसा दुष्प्रभाव डाल सकता है वह इस उपन्यास में दर्ज है।

शेष इनके दो उपन्यास 'पटरंगपुर पुराण' (1983) और 'अपनी गवाही' (2003) का चुनाव इस शोध–ग्रंथ में आधार ग्रंथ के रूप में किया गया है अतः इनका परिचय विस्तार से सम्बन्धित अध्यायों में किया जायेगा। इनके उपन्यासों के मुख्य विषय के

संदर्भ में स्त्री मौजूद है वैसे तो अनेक विषय हैं जो मानव जीवन के अनेक पहलुओं को उठाते हैं लेकिन कुछ चिंताएँ ऐसी हैं जो उनके लेखन की निजी पहचान बन जाती है। यह निजी पहचान ही उन्हें औरों से अलग कर देती है।

इनके उपन्यासों का अवलोकन करने पर उनकी मुख्य बात जो नज़र आती है वह है भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय दशा। स्त्रियाँ प्रत्येक समाज का आधा हिस्सा होती रही हैं किन्तु हर समाज में उनकी हैसियत हमेशा नीचे से ही तय होती रही है। भारत के विषय में भी यह उतना ही सच है बल्कि यों कहें कि वर्णव्यवस्था के कुचक्र में पिसते यहाँ के समाज में स्त्रियाँ और भी दलित हैं। अतः यहाँ भी पाश्चात्य स्त्री चेतना के बरक्स स्त्री की बेहतरी के लिए स्त्री से जुड़ी समस्याओं को लेकर बड़ी संख्या में स्त्रियों द्वारा लेखन कार्य सम्पन्न हुआ। इन्हीं में से एक स्वयं मृणाल पाण्डे भी हैं। चूंकि मृणाल पाण्डे की स्वयं की मातृभूमि पहाड़ क्षेत्र[5] रहा है अतः पहाड़ी स्त्रियों की दशा का प्रामाणिक चित्रण उनके उपन्यासों की प्रमुख स्त्री चरित्रों में साफ झलकता है जो नितान्त स्वाभाविक भी है। यही स्वाभाविकता उनके पत्रकारिता[6] के पेशे के अनुभव से सृजित स्त्री पात्रों में भी दिखाई पड़ती है जो उनके 'अपनी गवाही' और 'रास्तों पर भटकते हुए' जैसे उपन्यासों में आई है।

पहाड़ी जन–जीवन के प्रति लेखिका का लगाव[7] उनके सभी उपन्यासों में किसी–न–किसी रूप में है जिसमें पहाड़ी क्षेत्रों में संसाधनों की कमी, युवाओं का पलायन और प्रकृति के लगातार उजाड़े जाने के बीच वहाँ की स्त्रियों को अकेलेपन और उपेक्षा के जिस माहौल में जीना पड़ा है उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति उपन्यासों में दर्ज है। अतः उनके मुख्य इन्हीं दो विशेषताओं के आधार पर इनके उपन्यासों का विश्लेषण–मूल्याँकन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके अलावा अन्य इनकी

---

[5]ध्यातव्य है कि मृणाल पाण्डे का जन्म–स्थान टीकमगढ़, मध्यप्रदेश हैं किन्तु उनका सम्बन्ध 'अल्मोड़ा' शहर से है जो एक पहाड़ी प्रदेश है।

[6] मृणाल पाण्डे पत्रकारिता के क्षेत्र में लम्बा वक्त गुजार चुकी हैं। (देखें – मृणाल पाण्डे 'देवी' का फ्लैप

[7] मृणाल पाण्डे, एक स्त्री का विदागीत, राधाकृष्ण प्रकाशन 2003 प्रस्तावना में उन्होंने पृष्ठ संख्या –9 पर लिखा है –

"मेरी मातृभूमि इस अल्मोड़ा शहर....जो अलमोड़ा मेरी बाल स्मृतियों में बसा हुआ है।"

विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला जायेगा। जो स्त्री सम्बन्धी उनकी मुख्य चिंताओं से जुड़े हुए प्रश्न हैं और इनके उपन्यासों में प्रमुखता से उठाये गये हैं।

नाटक –

मृणाल पाण्डे एक सफल कथाकार होने के साथ–साथ एक समर्थ नाटककार भी हैं। इनके सभी प्राप्त नाटक राजकमल प्रकाशन से 'सम्पूर्ण नाटक' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।[8] इस सम्पूर्ण नाटक की प्रस्तावना स्वयं मृणाल पाण्डे ने लिखी है जिसमें उन्होंने इस बात का जिक्र किया है उनको पहला नाटक 'मौजूदा हालात को देखते हुए' 1979 में लिखा गया था वह अब अप्राप्य है तथा उसकी कोई प्रतिलिपि अब उनके पास नहीं है।[9] यह नाटक उस समय भोपाल में मंचित भी हुआ था। इसके बाद उन्होंने अपना बहुमंचित एवं प्रशंसित नाटक 'जो राम रचि राखा' लिखा जो श्री विजयदान देथा के द्वारा सृजित एक राजस्थानी लोककथा 'खोजी' से अनुप्रेरित होकर लिखा गया था।[10]

यह नाटक एक प्रयोगधर्मी नाटक है। इसमें एक बड़े सेठ के लड़के का सर्वहारा क्रांति के प्रति मूर्खतापूर्ण दिवास्वप्न है। राजकुमारों की तरह ऐशो–आराम में पला–बढ़ा कॉलेज का नवशिक्षित युवा मन्ना सेठ अपने–आप को सर्वहारा वर्ग का हितैषी समझता है। वास्तविक सच्चाईयों से दूर वह स्वयं के बल पर क्रांति की आकांक्षा रखता है जो निहायत ही मुर्खतापूर्ण और अव्यवहारिक है। मन्ना सेठ कभी चोरी तो कभी डकैती और हत्या तथा कभी राज्य के तख्ता–पलट जैसी हास्यास्पद क्रिया–कलापों को अंजाम देता है जिससे अत्यंत नाटकीय दृश्य पैदा हो जाता है। सभी घटनाक्रम उसके कृत्यों की व्यर्थता की ओर संकेत करते हैं किन्तु अपने कृत्यों को वह बिल्कुल सही समझता है और अफसोस प्रकट करता है कि स्वयं सर्वहारा वर्ग के लोग ही उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों को समझ नहीं रहे और उसका सहयोग नहीं कर रहे। इससे भी अधिक हास्यास्पद घटनाएँ तब घटती है जब उसके कृत्यों को पूँजीवादी ताकतों द्वारा (स्वयं

---

[8] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, 2011
[9] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, प्रस्तावना में उद्‌धृत, पृ. 8
[10] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, प्रस्तावना में उल्लिखित पृ. 6

उसके पिता द्वारा) उसे अपने पक्ष में मोड़ लिया जाता है। मन्ना सेठ का बुद्धिमान पिता चालाकी से अपने तथाकथित सर्वहारा रक्षक पुत्र को पूँजीवादी खेमे का नायक बना देता है। यह नाटक सर्वहारा क्रांति के प्रति तमाम बुद्धिजीवियों और नव उच्च-शिक्षित युवाओं की प्रतिबद्धता पर सवाल खड़े करता है जो स्वयं पूँजीवादी ताकतों के बिछे जाल को काट नहीं पाते और स्वयं को सर्वहारा क्रांति का अगुआ घोषित करते हैं। नाटक की शैली 'अंधेर नगरी' की शैली से काफी प्रभावित है जिसमें गीत भी उसी तरह डाले गये हैं तथा वाक्य भी काव्यात्मक लहजे में है। नाटक में प्राचीन संस्कृत नाटकों के पात्र नान्दी भी नाटक में एक पात्र के रूप में आया है, जो पृथ्वी और कलियुग से काफी प्रभावित है। अन्य पात्र मुसाहब और उप-उप मुसाहब हैं जो सर्वहारा वर्ग के संबंध रखते हैं।

आदमी जो मछुआरा नहीं था –

इंग्लिश नाटक 'Fisherman and his Wife' की कहानी का इस्तेमाल करते हुए मृणाल पाण्डे 'घर के अंधेरे से बाहर की दुनिया के अंधेरों को परखने की कोशिश' इस नाटक में करती है। नाटक का प्रमुख पात्र नन्ददुलारे एक कर्तव्यनिष्ठ मगर जीवन में अत्यधिक आगे बढ़ने की लालसा रखने वाला अफसर है। सत्ता में उसका एक 'गॉडफादर' है जो उसे आगे बढ़ाकर उसका इस्तेमाल कर रहा है लेकिन नन्ददुलारे यह समझ पाने में असमर्थ है। सत्ता का विषैला जहर धीरे-धीरे उसके घर को लील रहा है लेकिन वह उसे छोड़ नहीं पा रहा। महत्वाकांक्षी बीवी (रुक्मिणी) और बेटे की ख्वाहिशों को पूरा करते-करते अन्ततः वह घर टूटने की त्रासदी भोगने को मजबूर है। सामान्य आदमी की तरह न जी पाने की अधूरी इच्छा और बड़े घरों के अकेलेपन का दर्द भोग रहे बच्चे परिवार की टूटन को भोगने के लिए अभिशप्त हैं। मिश्रा जैसे दलाल जो सत्ता में बैठे कर्त्तव्यनिष्ठ अधिकारियों पर नज़रे गड़ाये बैठे रहते हैं कि कब दांव-पेंच से उसे अपने जाल में फंसाकर अपने काम निकाले जायें। एक बार इन दलालों के चक्कर में फंस नन्ददुलारे जैसे लोगों का जाल से निकलना असंभव हो जाता है। नन्ददुलारे की बीबी की महत्वाकांक्षा मिश्रा जैसे लोगों का बल

बन जाती है। सत्ता के ये दलाल समाज के ज़हर के रूप में हर जगह मौजूद हैं। नन्ददुलारे कर्त्तव्यनिष्ठ अफसर रहता है लेकिन जैसे–जैसे वह सत्ता के और नजदीक पहुँचता है उसके बाहर की जिम्मेदारियाँ उसे अपने घर से उतना ही दूर कर देती हैं। इतना अधिक कि अपने दादाजी की मृत्यु पर भी वह उनसे मिलने नहीं आ पाता है। वह अपना आत्ममंथन करता है तो पाता है कि अब वह इतना आगे आ चुका है कि उसके पास पीछे लौटने का कोई रास्ता नज़र नहीं आता क्योंकि सबकुछ तो खत्म हो चुका होता है। घर के सभी बूढ़े सदस्यों की मृत्यु हो जाती है, बेटा विदेश में एक्सीडेंट में मर जाता है। बीबी बेटे की मृत्यु के कारण पागल हो जाती है। अंत में वह थका–हारा, निराश अपनी बेटी के साथ अकेला रह जाता है।

यह नाटक एक दुःखान्त नाटक है जिसमें नायक अंततः स्वयं एक त्रासदी बनकर रह जाता है और इन सभी जिन्दगियों के बीच एक सूत्र उसके सामने रह जाता है 'मनुष्य के लिए उसकी स्वतंत्रता और नियति अन्ततः एक निजी सवाल है।'[11]

काजर की कोठरी –

इसका प्रकाशन वर्ष 1985 है। यह नाटक देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'काजर की कोठरी' का नाट्य रूपान्तरण है।[12] इसका कथानक यह है कि एक शहर के दो सेठ के बेटे–बेटी का आपस में ब्याह सम्बन्ध तय होता है। शादी से कुछ ही दिन पहले बेटी के पक्ष से कुछ सामान गायब हो जाता है जिसका खोज–पता करने पर कुछ मालूम ही नहीं होता कि आख़िर हुआ क्या ? अभी सब संशय में ही रहते हैं कि दुल्हन का अपहरण हो जाता है। तब दूल्हा हरनन्दन अपनी तरफ से खोजबीन की जिम्मेदारी लेता है क्योंकि उसका ससुर उसे ही अपनी सम्पत्ति का रखवाला घोषित कर चुका होता है। वह आसानी से मिल रहे धन को छोड़ना नहीं चाहता। विवाह समारोह में आई एक बांदी की मदद से हरनन्दन यह पता लगा लेता कि इन घटनाओं के पीछे किसका हाथ है। उसे पता चलता है कि दुल्हन के चचेरे भाई उस सेठ की दौलत को हथियाना चाहते थे। जबकि सेठ ने कह दिया था कि वह अपनी सारी

---

[11] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 10
[12] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ. 13 एवं 155

सम्पत्ति अपने होने वाले दामाद को देंगे। अतः चचेरे भाइयों ने बहन का अपहरण कर अपने एक साथी से उसका विवाह करने की साजिश रची थी। हरनंदन सारी साजिश को उजागर कर देता है और अपने पिता के माध्यम से अपने ससुर तक सारी बात पहुँचा देता है। नाटक में देवकीनन्दन खत्री की भाषा शैली को यथावत उस युग के अनुरूप रखने की कोशिश की गई है।

हालाँकि एक उपन्यास को नाट्य शैली में बदलना काफी कठिन होता है अतः कहीं–कहीं पर यह नाटकोपयुक्त नहीं लगता और विवरणात्मक हो गया है। दरअसल इस नाटक में मृणाल पाण्डे को एक स्त्री निगाह से इस उपन्यास की जांच–पड़ताल करने का एक उचित अवसर दिखाई पड़ा है जिसके बारे में वह भूमिका में चर्चा भी करती हैं।

उपन्यास में सामंतवादी मूल्यों के बीच एक स्त्री किस तरह से अपनी अस्मिता खोकर एक सामंती मिजाज के पुरुष की आन–बान का सवाल बन जाती है इसी परिप्रेक्ष्य को मृणाल पाण्डे ने इसके नाट्य–रूपान्तरण में रेखांकित करने की कोशिश की है। उपन्यास के नायक हरनंदन के नायकत्व पर इन्होंने एक सवाल खड़ा किया है कि जो व्यक्ति मात्र अपहरण होने पर कलंकित या झूठी होने की संभावना से एक स्त्री को अपने प्रेम के काबिल नहीं समझता वह नायक कैसे कहला सकता है। इसी तरह से लड़की के पिता के सनकपन को भी उन्होंने दिखाया है जो लड़की को परेशानी में डाल देता है।[13]

चोर निकल के भागा –

इसका प्रकाशन 1995 ई. में हुआ था।[14] इस नाटक का प्रेरणास्रोत 'पारसी थियेटर' था जिसकी भाषा शैली को इस नाटक में मास्टर गेंदालाल और बी शरीफा जैसे पात्रों के माध्यम से रूप प्रदान किया है। नाटक में चार मित्रों की कहानी है जो बेरोजगार हैं और किसी ऐसी तरकीब की खोज में हैं जो उन्हें तुरंत मालामाल बना दे। एक ढाबे में बैठकर बौद्धिक गप्पबाजियों में वह मशगूल थे कि वहाँ पहुँचे एक बाबा से

---

[13] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2011, पृ. 14 प्रस्तावना
[14] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011

उन्हें भभूत की दो डिबिया मिलती है जिसके बारे में बाबा ने कहा था कि वह उनकी समस्याओं को दूर कर देगा। वह उन डिबियाओं को लेकर बाबा ने बताये हुए व्यक्ति के घर पहुँच जाते हैं। वहाँ पहुँचकर उन्हें बहुत ताज्जुब होता है कि वे जिसके पास अपनी समस्या का हल ढूढ़ने आये हैं वे तो खुद ही फटेहाल स्थिति में हैं लेकिन जल्दी ही उन्हें अपने भभूतों के गुणों का पता चल जाता है। दोनों भभूत किसी भी चीज को छोटा या बड़ा बना सकते थे। सभी मिलकर ताजमहल चुराकर उसे मोटे दाम में बेचकर मालमाल होने की योजना बनाते हैं। अपनी योजना में वह सफल भी हो जाते हैं तभी नाटक में दिलचस्प मोड़ आता है और नीता का भाई जो एक माफिया डॉन है आ धमकता है और ताजमहल स्वयं ले जाता है। शरीफा बी की चालाकी से वह स्वयं भी भभूत की वजह से छोटा हो जाता है। इसके बाद भी उनकी समस्याएँ खत्म नहीं होती और जोकर और जेम्स बांड जैसे पात्र बीच –बीच में आकर अन्ततः ताजमहल चुराकर भागने में सफल हो जाते हैं।

संकट की इस घड़ी में पुनः बाबा का प्रवेश होता है और ताजमहल उनके पास लौट आता है। बाबा ताजमहल को वापस वहीं रखने की बात कह अपना असली रूप उन सभी को दिखाते हैं। नाटक के माध्यम से शिक्षित बेरोजगार युवाओं की भटकन, नेताओं का असली चरित्र और भ्रष्ट नौकरशाही के ऊपर एक व्यंग्य किया गया है साथ ही पारसी थियेटर की गान, तुकबंदी की संवादात्मक शैली एवं अतिनाटकीय तत्त्वों की विशेषता को वर्तमान भारत की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के साथ सांदर्भिक प्रयोग कर उसे अभी–भी एक प्रासंगिक शैली के रूप में प्रयोग किया है। मृणाल पाण्डे की यह कोशिश अन्य नाटकों में भी दिखाई देती है।[15]

इन नाटकों के अतिरिक्त एक अन्य प्रयोगधर्मी नाटक 'शर्माजी की मुक्तिकथा' है जिसका प्रकाशन सन् 2002 में हुआ था। यह नाटक सत्ता के क्रूर चेहरे को बेनकाब करने वाला है। भारत में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है इसीलिए निरंकुश सत्ता लगातार उसे कुचलने की कोशिश करती है ताकि सच कभी सामने आ

[15] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011

ही न पाये। नाटक में अवध नारायण शर्मा नामक एक संपादक/पत्रकार है जो सत्ता के बारे में हिंदी में लिखता है। उसी की तरह उसके कई मित्र सम्पादक और भी हैं। लेकिन सरकार उन्हें अभिव्यक्ति को आजादी उन्हें तब देगी जब वह सत्ता के पक्ष में और अंग्रेजी भाषा में लिखें। दरअसल मातृभाषा में लिखने–पढ़ने पर उसे भारत जैसे देश में ज्यादा से ज्यादा लोग सोच–समझ पायेंगे जबकि अंग्रेजी भाषा वही लोग समझेंगे जो आम–जनता से ऊपर है और सत्ता के पिट्ठू हैं। जो सम्पादक इस बात को स्वीकार नहीं करते उन्हें सत्ता द्वारा तलघर में भेज दिया जाता है जहाँ उन्हें पागल करार दिया जाता है।

सत्ता के साथ उसका सम्पूर्ण तंत्र किस तरह जुड़ा हुआ है वह डॉक्टर के चरित्र में दिखता है। जहाँ सत्ता के करीब बने रहने के लिए वह साम–दाम दण्ड–भेद कुछ भी इस्तेमाल कर सकता है। सत्ता का अन्धापन उसके मूर्खतापूर्ण क्रियाकलापों में दिखता है जब वह बिना ठीक–ठाक जांच–पड़ताल किये दोनों कैदियों से बातचीत कर दोनों को ही रिलीज कर देता है जिसमें दूसरा कैदी व्यक्ति सचमुच में पागल होता है। यह नाटक मंचन की दृष्टि से भी रंग–निर्देशकों को आकर्षित करता है क्योंकि यह कथ्य को कई आयामों से कल्पित कर अपनी–अपनी सुविधानुसार मंच पर प्रस्तुत करने की संभावनाओं से पूर्ण है अतः इसका मंचन भी कई बार हो चुका है।[16]

मृणाल पाण्डे दूरदर्शन और रेडियो से जुड़ी हुई हैं। 'सम्पूर्ण नाटक' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने इन नाटकों के अलावा दूरदर्शन और रेडियो के लिए भी नाटक लिखे जिनमें से अधिकतर अब अप्राप्य हैं।[17] इस नाटक संग्रह में दो रेडियो नाटक भी संकलित हैं जिसकी प्रतिलिपि उनके पास मौजूद थी। ये दो रेडियो नाटक हैं – 'सुपरमैन की वापसी' और 'धीरे–धीरे रे मना'।

'सुपरमैन की वापसी' हास्य शैली में लिखा गया एक रेडियो नाटक है सुपरमैन अपनी प्रेमिका के कहने पर भारत आता है और लोगों की मदद करना चाहता है और बदले में कुछ पैसे कमाना चाहता है लेकिन यहाँ की समस्याएँ उसकी बिल्कुल समझ में

---

[16] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011
[17] वही, प्रस्तावना

नहीं आती और काफी दिलचस्प नाटकीय दृश्य पैदा होते हैं क्योंकि यहाँ की समस्याएँ उसकी समझ के बाहर हैं। पारिवारिक झगड़े, शादी के झमेले की पेचिदगियों से वह पूरी तरह से नावाकिफ रहता है और यह सब देखकर परेशान हो जाता है कि वह क्या करे। मदद करने की उसकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है क्योंकि मदद के बदले लोग उससे उल्टे परेशान ही हो जाते हैं। इन्हीं नाटकीय स्थितियों के बीच वह बम्बई चला जाता है और वहाँ का बड़ा स्टार बन जाता है।

दूसरा रेडियो नाटक 'धीरे–धीरे के मना' है इसमें का मुख्य पात्र सुरेश है जिसे आम जनता और गरीबों का मदद करने पर परिवार और समाज से ही एक तरह से निष्कासित कर दिया जाता है वह भी पागल करार देकर। जबकि वह एक कर्मठी और संवेदनशील मनुष्य है। स्वयं उसकी बीवी उससे तलाक ले लेती है, भाई–भौजाई उसके घर आने पर परेशानी महसूस करते हैं। उसे नौकरियों से निकाल दिया जाता है कि वह सिरफिरा हो गया है और दिन–भर सर्वहारा की बात करता है। इसमें भारतीय समाज की उस विडम्बना की ओर इंगित किया गया है जिसमें कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को ही पागल और सिरफिरा करार स्वयं समाज द्वारा ही दे दिया जाता है। जबकि वे ही लोग समाज की क्षुद्र मानसिकता से लड़ने का साहस दिखाते हैं अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर काम करते हैं।

मृणाल पाण्डे के नाटक काफी कलात्मक और प्रयोगधर्मी हैं। अपने कथ्य की विविधता और चुस्त संवादात्मक योजना की वजह से वह नाटको को नई–नई संभावनाओं से युक्त करने में सफल हुई हैं। ये नई–नई संभावनाएँ ही नाटक को उद्देश्यपूर्ण और प्रयोगधर्मी बनाती हैं। सत्ता और उसके सम्पूर्ण तंत्र के ख़तरनाक गठजोड़ और उसके आतंकी ताने–बाने को 'शर्माजी की मुक्तिकथा' और 'राम रचि राखा' में स्पष्ट दिखाया गया है। दोनों ही व्यंग्यपूर्ण नाटक हैं लेकिन इस व्यंग्य के पीछे जो कुरुप चेहरा नज़र आता है वह काफी भयानक है। 'काजर की कोठरी' में सामंती परिवार में बलि चढ़ती स्त्री और पारिवारिक कलह (सम्पत्ति के लिए) को दिखाया गया है। 'चोर निकल के भागा' बेरोजगार युवकों के गुमराह होकर गलत राह चुनने की मजबूरी के साथ कलाकारों के प्रति उपेक्षा को प्रकट करता है। रेडियो नाटक

'सुपरमैन की वापसी' हास्य–व्यंग्य से भरपूर सुपरमैन की कहानी कहता है जो भारतीय समाज के जटिल तहों को एक अनजान विदेशी के किस कदर हैरानी–भरा हो सकता है, इसमें प्रस्तुत किया है। इनके सभी नाटक सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किये जा चुके हैं।[18]

निबंध संग्रह एवं स्त्री–विषयक आलोचनात्मक पुस्तकें :

'स्त्री'–देह की राजनीति से देश की राजनीति तक – इसका प्रकाशन सन् 1987 ई. में हुआ था। यह उनके स्त्री संबंधी निबंधों का संग्रह है जो उन्होंने स्त्रियों की विविध समस्याओं पर विभिन्न समयों में लिखा था। इस निबंध संग्रह में लेखिका ने स्त्री की उन तमाम छवियों को आलोचनात्मक दृष्टि से परखने की कोशिश की है जो परम्परागत या आधुनिक तरीके से गढ़ी गयी हैं। वास्तव में भारत में स्त्रियों के श्रम का बँटवारा अभी भी परम्परागत पेशों में ही दिखता है। यहाँ का अधिकांश स्त्री श्रम बल जो कृषिक्षेत्र से जुड़ा हुआ है या इसके समानान्तर ही अन्य क्षेत्र जैसे – बीड़ी बनाना, पंखे–चटाईया बुनना या पशुपालन है। इन क्षेत्रों में उत्पादक या स्वालंबन होने के बावजूद उनका शोषण बदस्तूर जारी है चाहे घर हो या बाहर। उनके उत्पादन एवं पूरे श्रम का अधिकांश हिस्सा दूसरों के हाथ में चला जाता है चाहे वह उसके उत्पादों को कम दाम में हथिया लेने को उत्सुक दलाल हो या वह ठेकेदार जो एक मजदूर स्त्री को न्यूनतम वेतन में अधिकतम मजदूरी लेने वाला या फिर घर में बैठा पति जो उसकी दिन–भर की कमाई को शाम होते ही हथिया लेता है। 'कृषि क्षेत्र में श्रमरत स्त्रियां', 'घर, परिवार और स्त्री', 'श्रमजीवी स्त्री' आदि निबन्धों में इन विषयों पर प्रकाश डाला गया है। और भी, आधुनिक पेशे से जुड़ी स्त्रियों तक को शोषण लिंगीय भेदभाव के कारण सहन करना पड़ता है। बड़े–बड़े पदों पर बैठी अफसर तक को स्त्री होने के कारण कम वेतनमान दिया जाता है यहाँ तक कि सिनेमा की वे तारिकाएँ जो दूर से तो बिल्कुल स्वतंत्र और शोषणमुक्त स्त्रियाँ लगती हैं लेकिन इंडस्ट्री के भीतर वह भी एाक तरह से बंदिनी ही नज़र आती हैं। (निजमन मुकुर सुधारि, स्त्रियाँ अश्लीलता का

---

[18] मृणाल पाण्डे, सम्पूर्ण नाटक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2011 की प्रस्तावना में इन नाटकों के मंचन का ब्यौरा दिया गया है।

विरोध क्यों कर रही हैं, देखो एक आजाद औरत की गुलामी आदि निबन्धों में)[19]। इसके अतिरिक्त इन निबंधों में स्त्रियों से जुड़े कुछ अन्य अहम सवालों को उठाया गया है जैसे –स्त्रीधन, दहेज, घरेलू श्रम, शिक्षा, परिवार नियोजन एवं स्वास्थ्य आदि। दरअसल ये वे मुद्दे हैं जिन पर बात किये बिना स्त्रीवाद से जुड़ा हुआ कोई भी प्रश्न अधूरा ही रहेगा।

परिधि पर स्त्री–

'परिधि पर स्त्री' मृणाल पाण्डे की स्त्री–विमर्श पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसका प्रकाशन सन् 1996 ई. में हुआ था। जिस समय की यह पुस्तक है उस समय तक इस विषय पर अभी गिनी–चुनी पुस्तकें ही लिखी गयी थी। इस पुस्तक में लेखिका भारत की उन तमाम परिधि पर खड़ी औरतों की आवाज बनती हैं जो अपनी अस्मिता के लिए नहीं बल्कि अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। वे औरतें अपनी बुनियादी आवश्यकताओं के लिए ही अभी प्रकृति और समाज से कठोर संघर्ष कर रही हैं। इन औरतों का सम्बंध भारत की गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली मजदूर निम्नवर्गीय स्त्री समाज से है। इन औरतों के बारे में शहरों में बैठी अस्मिता का चिंतन करने वाली औरतें भी बात करना पसंद नहीं करती। मृणाल पाण्डे नारीवाद से सम्बन्धित इन सीमाओं को कहीं भी ढकने का प्रयत्न नहीं करती बल्कि प्रत्येक कोणों से उनकी चर्चा कर समस्या का समाधान सुझाती हैं।

पुस्तक की शुरूआत में ही नारीवाद से जुड़ी अनेक भ्रांतियों और मीडिया द्वारा प्रस्तुत भ्रामक छवि के बारे में मृणाल पाण्डे सजगता से विचार करती हैं। उन्होंने माना है कि मीडिया द्वारा जिस तरह का नारीवाद पेश किया गया है उससे आम जनता में इसके प्रति गलत नजरिया बना। नारीवाद का उग्र धड़ा स्त्री–पुरुष के बीच समता की बजाय स्त्री की अलग सत्ता का हिमायती बन गया। इस प्रवृत्ति ने नारीवाद को एक अतिवाद से अलग दूसरे अतिवाद पर ले जाकर खड़ा कर दिया। वास्तव में वैचारिक

---

[19] मृणाल पाण्डे, स्त्रीः देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, प्रकाशन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1987

अतिवाद किसी भी समस्या को उसके मूल बिन्दुओं से भटकाकर अपनी सत्ता स्थापित कर लेता है।

नारीवाद के बारे में उनका मानना है "नारीवाद कतई स्त्रियों को बृहत्तर समाज से अलग–थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों के खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने दर्शन नहीं है। यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है जो संवेदनशील नागरिकों में पहले शोषित और प्रवंचित स्त्रियों की स्थिति के प्रति सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण विकसित करके उसके उजास में उन्हें अपने पूरे समाज के शोषित और प्रवंचित तबकों को समझने की क्षमता देता है।[20] नारीवाद की यह परिपक्व दृष्टि लेखिका के संतुलित दृष्टिकोण को दर्शाती है। मृणाल पाण्डे का मानना है कि केवल पश्चिम से आयातित दृष्टिकोण को मानकर हमें भारत में इसकी आवश्यकता को नजरंदाज नहीं करना चाहिए। ज्ञान–विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी पश्चिम का सहारा लिया गया है तो फिर इसके लिए इतनी हाय–तौबा क्यों ? वस्तुतः नारीवादी दृष्टिकोण में भारतीय परिस्थितियों के अनुसार कोई ताल–मेल न देखकर इसके अनेक दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित कराया जाता रहा है किन्तु नारीवाद जिन मूल बिन्दुओं को लेकर आगे बढ़ता है वह भारतीय स्त्री के लिए भी सही है यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा। अपने हक और अधिकार की मांग पूरे विश्व की स्त्रियों के लिए एक ही है। यह अवश्य है कि उसको पाने का रास्ता भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ही खोजा जाना चाहिए।

नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उन छद्म मुखौटों का प्रतिकार करता रहा है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृतित के अलावा कुछ नहीं।"[21] आगे इस पुस्तक में वह गांवों में बसी, निम्न, मध्यवर्गीय स्त्रियों के स्वावस्थ्य, कन्या भ्रूणहत्या, यौन हिंसा, प्रजनन सम्बन्धी मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करती हैं। महिलाओं से सम्बन्धित आंकड़ों के आधार पर उन्होंने इन स्त्रियों की कठोर जिंदगी का पूरा–पूरा ब्यौरा दिया है। इसके साथ ही स्त्रियों की सांस्कृतिक गुलामी की भी वे चर्चा करती हैं जिसमें स्त्रियों

[20] मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 11
[21] मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 9

के मानसिक पिछड़ेपन के कारण मौजूद हैं। स्त्रियों की पिछड़ी चेतना का पूरा–पूरा लाभ पितृसत्ता को मिलता है जिससे उसकी जड़ें और भी मजबूत होती हैं। कन्या भ्रूण–हत्या में महिलाओं की भी भागीदारी होती है। वैसे इसका परिणाम अब समाज में दिखने लगा है और अनेक राज्यों में स्त्री–पुरुष अनुपात में महलाओं की संख्या में तेजी से गिरावट दर्ज की गई। कुछ राज्यों में तो भयावह स्थिति है। इन राज्यों को मृणालजी 'बरमूडा त्रिकोण' का नाम देती है। जिसमें राजस्थान, हरियाणा, उत्तर–प्रदेश तथा मध्य प्रदेश जैसे राज्य हैं। इन राज्यों में स्त्रियों की संख्या लगातार कम होती जा रही है। कारण कन्या भ्रूण हत्या और शिशुहत्या, लेखिका समाज की इस स्त्री विरोधी कृत्य पर सवाल खड़े करती हैं। क्या वाकई इस तरह से हम एक स्वस्थ समाज की कल्पना कर सकते हैं ? और यदि नहीं तो फिर समाज रुग्ण परिस्थितियों में रहने के लिए अभिशप्त है।[22]

'परिधि पर स्त्री' नारीवादी आलोचना के आधार स्तम्भों में से एक है। अक्सर नारीवादी चिंतकों पर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि वे शहरी समाज की उच्च एवं मध्यवर्गीय स्त्रियों के बारे में ही विचार–विमर्श करता है गांवों में बसने वाली स्त्रियों का नहीं तो कुछ हद तक यह सच्चाई भी है। मृणाल पाण्डे ने इस पुस्तक को लिखकर एक बड़ी कमी की पूर्ति की है।

ओ उब्बीरी[23]–

'ओ उब्बीरी...' हिंदी में उपलब्ध ग्रामीण भारतीय स्त्री की जनसंख्या, प्रजनन एवं स्वास्थ्य से जुड़ी एक अध्ययनपरक पुस्तक है। मृणाल पाण्डे पत्रकारिता से लम्बे समय से जुड़ी हुई हैं और भारत सरकार के विभिन्न महकमों में उच्च पदों पर रह चुकी हैं अतः पुस्तक में दिये गये आंकड़ों के आधार पर किये गये विश्लेषण को नितान्त असंगत नहीं ठहराया जा सकता है। पुस्तक इसलिए भी महत्तवपूर्ण है कि तमाम स्त्रीवादी विमर्शों में स्त्री के हक एवं अधिकारों की लड़ाई की बातों में स्त्री का स्वास्थ्य कहीं भी स्थान नहीं

---

[22] मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
[23] मृणाल पाण्डे, ओ उब्बीरी (कोख से चिता तक, भारतीय स्त्री का प्रजनन और यौन जीवन), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003

पाता, भले ही थोड़ी–बहुत चर्चा उसके कोख व प्रजनन पर हो जाये। ग्रामीण भारत में महिलाओं का स्वास्थ्य सबसे बड़ी समस्या है जिसके प्रति स्वयं वह महिला भी सचेत नहीं होती।

इस किताब में भारत के विभिन्न राज्यों में ग्रामीण इलाकों में और शहरों में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों के साथ स्वयं लेखिका ने दौरा किया है और वहाँ महिलाओं के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए बने सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों का जायजा लिया है। अधिकांश जगहों पर उन्हें यह महसूस हुआ है कि सरकारी महकमें में इस कार्य के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं है और ना ही वे इस क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग के सारे दावों की पोल यह पुस्तक खोल देती है क्योंकि दौरा करने के दौरान लेखिका को यह ज्ञात हुआ कि उन इलाकों में भी जहाँ पर स्वास्थ्य केन्द्र मौजूद हैं वहाँ की औरतों के पास स्वास्थ्य संबंधी सामान्य जानकारियाँ भी न के बराबर है। इस मुद्दे को लेखिका ने स्त्री के सामाजिक–राजनीतिक अधिकारों के साथ जोड़कर देखा है। हकीकत यही है कि जब तक एक स्त्री अपने आप के बारे में सचेत नहीं होगी तब तक वह अपने अधिकारों के बारे में सचेत नहीं होगी और ना ही अपने अधिकारों की प्राप्ति की राह में कदमं उठा सकेगी। वहीं भारतीय सरकार भी अपनी जनसंख्या नीति को सफल नहीं बना सकती जब तक कि वह महिलाओं के स्वास्थ्य एवं प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझा नहीं लेती।

सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अलावा इस क्षेत्र कई गैर–सरकारी संगठन भी ग्रामीण/शहरी इलाकों में अपना स्वास्थ्य कार्यक्रम चला रहे हैं जो लेखिका की दृष्टि में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में पूरी तरक सक्षम और समर्थ हैं। वस्तुतः स्वास्थ्य सेवाओं में इन दोनों (सरकारी और गैर–सरकारी) की क्षमताओं का आंकलन करते हुए ही वह अपना निष्कर्ष देती हैं। भारत में ऐसे कई संगठन महिलाओं की बेहतरी के लिए काम कर रहे हैं जिसमें से एक्शन इंडिया, सीनी, आह्लाद, मासूम, सेवा, रूवसेक, सेहत, सर्च, अर्थ आदि महत्त्वपूर्ण हैं जिनपर इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा की गई है।

इस पुस्तक में स्वस्थ्य एवं प्रजनन से जुड़े जिन महत्त्वपूर्ण मुद्दों को उठाया गया है वे बिन्दुवार निम्नवत हैं–

1) यौन सम्बन्धी समस्याएँ
2) किशोरवय लड़कियों की यौन संबंधी समस्याएँ
3) गर्भपात संबंधी समस्याएँ
4) बांझ–कोख संबंधी समस्याएँ
5) गाँवों में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा और अंधविश्वास से उपजी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ
6) भारतीय सरकार की स्वास्थ्य प्रणाली की समस्याएँ
7) दूर–दराज के गाँवों में स्वास्थ्य सेवा के कार्यान्वयन की समस्याएँ
   शिशुपालन की समस्या
8) गर्भ–निरोधक, परिवार नियोजन के बारे में ग्रामीणों की अज्ञानता एवं अन्य

जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं –

इसका प्रकाशन 2006 में हुआ था। यह पुस्तक भी स्त्री संबंधी आलेखों एवं टिप्पणियों का संग्रह है। इसमें स्त्री के लगातार रुढ़ और पितृसत्तात्मक नजरिये से गढ़ी जाती हुई स्वतंत्रता के पहले से लेकर अब तक की छवियों के पीछे के ऐतिहासिक बदलावों को लेखिका ने लक्षित किया है। स्वतंत्रता के पूर्व के 50–60 साल स्त्री के लिहाज से काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसी समय भारत में आधुनिकता का आगमन हुआ और बेड़ियों में जकड़ी स्त्री के बंधन धीरे–धीरे ढीले होने लगे। बाल–विवाह, सती प्रथा और पर्दा–प्रथा के खिलाफ आवाजें उठीं। पुस्तक में पारसी थियेटर और सिनेमा में स्त्री की भूमिका और उसकी बनती तस्वीर से स्वतंत्रता के समय स्त्री के बदलते रूपों की तरफ से विचार–विमर्श किया गया है।[24] इसके साथ ही राजनीति में महिला सशक्तीकरण और पंचायतीराज जैसे मुद्दों पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

---

[24] मृणाल पाण्डे, जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, राजकमल प्रकाशन निबंध, थियेटर और फिल्मों की खराद पर अभिनेत्रियां

कहानियाँ – इनकी कहानियों के अब तक सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जो निम्नलिखित हैं–

'दरम्यान' (1977), 'शब्दभेदी' (1980), 'एक नीच ट्रेजेडी' (1981) 'एक स्त्री का विदागीत' (1985), 'बचुली चौकीदारिन की कढ़ी' (1990), 'यानी की एक बात थी' (1990) और 'चार दिन की जवानी तेरी' (ये सभी राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हैं।) पहले के चार कहानी संग्रहों की कहानियाँ 'बचुली चौकीदारिन की कही' (भाग–1, सन् 1990 में प्रकाशित) और 'यानी की एक बात थी' (सन् 1990, भाग–दो) में संकलित होकर इन्हीं दो भागों में आ चुकी हैं जिसमें से 'दरम्यान' और 'शब्दबेधी' की कहानियाँ 'यानी की एक बात थी' में और 'एक नीच ट्रेजेडी' एवं 'एक स्त्री का विदागीत' ये 'बचुली चौकीदारिन की कढ़ी' में संकलित की गई हैं।[25] इन सभी कहानियों में मानव–जीवन से जुड़े अनेक पक्षों को उठाया गया है जिसमें भारतीय परिवेश के साथ–साथ विदेशों में रहने वाले भारतीय परिवारों के आपसी रिश्तों एवं विदेशी सभ्यता के साथ तालमेल के बीच की कश्मकश को बखूबी चित्रित किया गया है। मृणाल पाण्डे की पहली कहानी 'कोहरा और मछलियां' (1977) जो पहली बार 'धर्मयुग' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी उसका परिवेश भी विदेशी भूमि ही है। इस कहानी में विदेश में रहते एक भारतीय परिवार की दास्तान है जिसमें आधुनिक होने का दिखावा इतना प्रबल है कि उसमें परिवार के सदस्यों के रिश्तों में भी एक घना कोहरा छा गया है जहाँ महत्त्वाकांक्षी बीवी के अन्दर ना तो अपने बच्चों और ना ही अपने बीमार पति के लिए संवेदनाएँ बची हैं जो उपरी संवेदना बची भी है वह मात्र छलावा ही है। जिस तरह कोहरे में इन्सान के आगे सभी वस्तुओं के अक्स धुंधले पड़ जाते हैं यही हाल इस परिवार का भी है जहाँ मात्र शरीर एक दूसरे से मिलते हैं मानवीय संवेदनाएँ नहीं।[26]

---

[25] मृणाल पाण्डे, यानी की एक बात थी (1990, भाग 2) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण मृणाल पाण्डे, 'बचुली चौकीदानि की कढ़ी' (1990, भाग 1), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – संस्करण में सम्मिलित कहानियों के आधार पर।

[26] मृणाल पाण्डे, 'कोहरा और मछलियाँ' (यानी की एक बात थी – वही, पृ. 2)

 TH22995

इसी तरह की एक कहानी 'चिमगादड़ें'[27] भी है जिसमें तंगहाली में गुजरती तीन अकेली औरतें हैं जिनमें आपस में कोई सौहार्द्र शेष नहीं बचा है।

एक अन्य कहानी 'प्रतिशोध' में एक कलाकार की निष्ठा और कला के प्रति उसके समर्पण को कहानी का विषय बनाया गया है।[28] इसी तरह एक इन्सान और जानवर के बीच एक दूसरे के अन्दर की मूल चित्तवृत्तियों के परस्पर द्वन्द्व के बीच इन्सान के जानवरपन की कहानी 'कुत्ते की मौत' में कही गयी है।[29] उनकी अन्य कहानियों में स्त्री केन्द्रित कहानियाँ भी प्रमुख जिनमें समाज की लिंगभेदी मानसिकता (लड़कियाँ)[30] परस्पर आकर्षण के बीच अन्तर्द्वद्व में घिरी स्त्री की उलझनें पति–पत्नी के बीच का मन–मुटाव, दूसरी औरत को लेकर पुरुषों का आकर्षण (शरण्य), स्त्रियों के आपसी संबंध ('चिमगादड़ें', 'बिब्बो' आदि), घर और रसोई में कैद औरतें ('ढलवान','और') एवं अन्य मुद्दों जैसे बिखरते दाम्पत्य संबंध, घर और बाहर दोनों मोर्चे पर काम करती स्त्रियों की तनावपूर्ण जिन्दगी इनकी कई कहानियों का केन्द्रीय विषय बनी है।

इसके अतिरिक्त मृणाल पाण्डे ने कहानी संग्रह 'बोलता लिहाफ!' 'हिंदी के वरिष्ठ कथाकारों द्वारा चयनित श्रेष्ठ कहानियाँ' का विष्णु नागर के साथ मिलकर सम्पादन किया है जिसमें हिंदी के साथ–साथ विश्व के मशहूर कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ हिंदी के वरिष्ठ लेखकों की टिप्पणी के साथ संग्रहीत की गई हैं।[31] इसमें 'साँप' – जान स्टीन बैक (टिप्पणी – विष्णु नागर), 'बोलता लिहाफ' भीष्म साहनी, 'टिकटों का संग्रह' – कारेल चापेक, 'उसने कहा था' – चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (टिप्पणी कृष्णा सोबती) एवं भुवनेश्वर की 'भेड़िये' जैसी क्लासिक कहानियों का संग्रह किया

---

[27] मृणाल पाण्डे, चिमगादड़े, 'बचुली चौकीदारिन की कढ़ी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1990

[28] मृणाल पाण्डे, 'प्रतिशोध' – वही

[29] मृणाल पाण्डे, 'कुत्ते की मौत' वही

[30] मृणाल पाण्डे, लड़कियाँ, 'चार दिन की जवानी तेरी' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2002

[31] मृणाल पाण्डे, विष्णु नागर,(सम्पादक), बोलता लिहाफ, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2007

गया है। ये सभी कहानियाँ 'कादम्बिनी'[32] पत्रिका में कथा प्रतिमान स्तंभ में प्रकाशित हुई थी। इसमें कुल 16 कहानियाँ संग्रहीत हैं।

इस कहानी संग्रह के अलावा लेखिका 'बंद गलियों के विरुद्ध' पुस्तक क्षमा शर्मा के साथ संपादित कर चुकी हैं एवं अन्य प्रतिष्ठित मासिक/दैनिक पत्रों का सम्पादन – भार भी उन्होंने उठाया है जिसमें 'वामा', 'कादम्बिनी', 'हिन्दुस्तान' जैसी पत्र/पत्रिकाएँ शामिल हैं। जिसमें उनके संपादकीय लेख राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी मुद्दों पर निकलते थे।

हिंदी के अतिरिक्त इन्होंने अंग्रेजी में भी साहित्य–सृजन किया है जिसका विवरण निम्नलिखित हैं – 'द सब्जेक्ट इज़ वीमेन', 'माई ओन विटनेस', 'दि डॉटर्स डॉटर' 'स्टेपिंग आउट : लाइफ एण्ड सेक्सुअलिटी इन रुरल इंडिया' नामक पुस्तकें।

[32] कादम्बिनी पत्रिका : इस पत्रिका का सम्पादन मृणाल पाण्डे कर चुकी हैं।

अध्याय द्वितीय

'पटरंगपुर पुराण' : पहाड़ी जन–जीवन और स्त्री

अध्याय द्वितीय

'पटरंगपुर पुराण' : पहाड़ी जन–जीवन और स्त्री

'पटरंगपुर पुराण' मृणाल पाण्डे के लेखन के प्रारंभिक दौर का उपन्यास है। इस उपन्यास से पहले उनका एक उपन्यास 'विरुद्ध' 1977 ई. में प्रकाशित हो चुका था। इस उपन्यास के प्रकाशन के लगभग पांच साल बाद 'पटरंगपुर पुराण'[1] सन् 1983 ई. में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः यह उपन्यास पहाड़ी संस्कृति पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा मिथकों में मौजूद एक पहाड़ी स्थल से लेकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बाद तक के लम्बे कालखण्ड को लेकर चलती है। पुराणों का संबंध अतिमानवीय कल्पनाओं और लोकविश्वासों से जुड़ा हुआ होता है जिसमें कुछ मिथक, कुछ गप्प भी समयान्तराल पर जुड़ जाते हैं। इस उपन्यास में भी कई मिथक और गप्प के प्रसंग जुड़े हुए हैं। इस उपन्यास में कथावाचिका कथा–शैली में पटरंगपुर शहर का इतिहास कहती है जिसे उसने इस उपन्यास की प्रमुख पात्र आमा से सुना है। उपन्यास में आमा के पूर्वजों से लेकर आमा के जीवन तक का इतिहास इस शहर के इतिहास के साथ समानान्तर रूप से चलता रहता है। इस प्रकार आमा की कहानी शहर की कहानी और शहर की कहानी आमा की कहानी बन जाती है।

कथानक : पटरंगपुर पहाड़ों की गोद में बसा एक छोटा सा शहर है। जनश्रुतियों के अनुसार यह शहर पुराणों और मिथकों में एक युद्धस्थली के रूप में प्रसिद्ध है। यही वह शहर है जहाँ पर कुम्भकरण, बाणासुर, भीमपुत्र घटोत्कच जैसे पौराणिक पात्रों की युद्ध में मृत्यु हुई थी। कहा जाता है कि धरती पर इनके खून के गिरने के कारण इसका रंग लाल हो गया। शहर की सबसे बुजुर्ग स्त्री आमा बतलाती है कि इस पहाड़ी स्थल के सौन्दर्य पर रीझकर एक चन्द्रवंशी राजा ने इसे अपनी राजधानी बना लिया। राजा के साथ राज–काज में सहयोग करने पंख वाले ब्राह्मण भी इस शहर में आये। इन ब्राह्मणों के अगल–बगल बाह में पंख हुआ करते थे जिसकी

---

[1] मृणाल पाण्डे, पटरंगपुर पुराण

मदद से ये उड़कर कहीं भी आ–जा सकते थे। राजा के आने के बाद यहाँ पर उद्योग–धन्धे भी स्थापित हुए। इन्हीं में कपड़ा रंगने वाले कारीगर भी यहाँ अपना व्यवसाय करने लगते हैं। कपड़ा रंगने वाले कारीगरों ने ही शहर का नाम पटरंगपुर रखा। इन्होंने ही इस शहर में गप्प उड़ाने, अफवाह फैलाने की प्रवृत्ति का सूत्रपात किया।

चंद्रवंशी राजा के समय में मैदानी शहर में एक ब्राह्मण परिवार रहता है। उनके घर में विवाह के सात वर्ष पश्चात एक पुत्री का जन्म होता है। पुत्री के जन्म पर सौतेली सास बहुत क्षुब्ध होती है। वह हमेशा बहू को कोसती रहती है। रामदत्त अपनी पत्नी और पुत्री के निरादर से दुःखी होकर अपना घर छोड़कर पटरंगपुर में आ बसते हैं। शहर में एक ज्ञानवान ब्राह्मण के आने पर वहाँ के लोग बहुत प्रसन्न होते हैं और उनका आदर–सत्कार करते हैं। इसी बीच इस परिवार पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है। रामदत्त को एक स्त्री अपनी माया–विद्या द्वारा अपने वश में कर लेती है। रामदत्त परिवार छोड़ उस स्त्री के साथ रहने लगते हैं।

रामदत्त की पत्नी अपनी इकलौती पुत्री लक्ष्मी को लेकर अकेले उस शहर में रहने लगती है। लक्ष्मी का विवाह 12वें वर्ष में दुर्गादत्त के साथ सम्पन्न होता है। विवाहोपरान्त लक्ष्मी और दुर्गादत्त की चार संताने होती हैं जिसमें एक बेटा तथा तीन बेटियाँ हैं। तीन बेटियों को जन्म देने के कारण लक्ष्मी की सास उसे दिन–रात तानें दिया करती है "लक्ष्मी की सास सुना, हर घड़ी कहने वाली हुई कि एक तो लड़ाई–भिड़ाई का जमाना जिस पर सिर पर ये तीन–तीन। जने कैसे निबटेंगी ? करके ! और भी कहने वाली हुई कि जब लड़की होती है तो धरती सात अंगुल रसातल को धंस जाती है, करके।"[2] लक्ष्मी कभी भी अपनी सास को जवाब नहीं देती और चुपचाप घर का काम करती रहती है।

समय के साथ लक्ष्मी की तीनों बेटियों का विवाह अच्छे घरों में सम्पन्न हुआ। उसी समय शहर पर बाहरी शासकों ने आक्रमण किया। उस समय औरतों ने

---

[2] पटरंगपुर पुराण, पृ. 16, 17

घर–परिवार को संभाला और सम्पत्ति की रखवाली की। कुछ समय पश्चात् आक्रमणकारी लौट गये तब जाकर स्त्रियों ने चैन की सांस ली। लड़ाई में लक्ष्मी का बेटा हरिया मारा जाता है। उसकी मृत्यु के शोक में लक्ष्मी की भी जल्दी ही मृत्यु हो जाती है।

इस आक्रमण के बाद शहर पर गोरखाओं ने आक्रमण कर दिया। इन्होंने पुराने शहर पटरंगपुर को पूरी तरह से उजाड़ दिया। ब्राह्मणों के पंख काट डाले गये और कपड़े रंगने का व्यवसाय भी पूर्णतया नष्ट हो गया। इन्होंने बहुत ही क्रूरतापूर्वक शहर पर शासन किया। उस समय लक्ष्मी की बेटी की बड़ी लड़की गर्भवती थी। उसने चंदा नाम की एक पुत्री को जन्म दिया। "सास ने सुना, बड़ा मुँह जैसा बनाया, कि लड़की हुई है करके।"[3]

चंदा का विवाह गिरीश नाम के लड़के के साथ सम्पन्न होता है। एक दिन गिरीश को गोरखाओं ने अपने यहाँ बेगार के लिए बुलवाया। पहाड़ पर बोझा ढोने के कारण गिरीश के शरीर ने जवाब दे दिया और उसकी मृत्यु हो गई। उसी वक्त उसकी पत्नी चंदा ने एक पुत्री को जन्म दिया। पिता की मृत्यु पर नवजात शिशु कन्या को पिता की मृत्यु का क़ारण ठहराया गया "सास ने सुना सिर पीट लिया कि लौंडिया का मूल–नक्षत्र ही बाप को खा गया करके।"[4] चंदा भी अपनी बेटी के प्रति उदासीन रहने लगी। लड़की का नाम पड़ा भगवती।

भगवती के समय में ही पटरंगपुर में गोरखाओं और अंग्रेजों का युद्ध हुआ। युद्ध में अंग्रेज जीत गये और उनका शासन यहाँ पर स्थापित हुआ। भगवती की बेटियों के ही वंश में आगे चलकर आमा का जन्म हुआ। आमा का विवाह पटरंगपुर शहर के एक बड़े परिवार विष्णुकुटी में हुआ। आमा का पीहर बहुत ही रईस था और आमा का लालन–पालन बहुत ही लाड़–प्यार से हुआ था। ससुराल में आने पर आमा का जीवन बदल गया। उसकी सास चम्पा बहुत ही कठोर मिजाज की स्त्री थी। पीहर की रईसी

---

[3] पटरंगपुर पुराण, पृ. सं–33
[4] पटरंगपुर पुराण, पृ. 34

को लेकर चम्पा बुबू दिन–रात ताने दिया करती थी। छुआछूत को लेकर बहुत सजग रहती थी और इसमें ज़रा सी चूक होने पर भड़क उठती थीं।

विष्णुकुटी परिवार अंग्रेजी सत्ता का विरोधी था। आमा के ससुर कर्मकांडी ब्राह्मण थे और उन्हें पाश्चात्य जीवन–शैली से सख्त घृणा थी। शहर में एक दूसरा परिवार भी था – विक्टोरिया कॉटेज। ये दोनों परिवार शहर में प्रमुख थे और एक–दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता रखते थे। ये अंग्रेजी सरकार के हिमायती थे और इनके परिवार का बड़ा बेटा गोपाल सरकार में डिप्टी–कलक्टर के पद पर था। घर में भी पाश्चात्य जीवन–शैली का प्रभाव था। विक्टोरिया महारानी की फोटो लगी हुई थी "तो जब बिक्टोरिया महारानी की फोटू फरेम होके उनके घर दिल्ली शहर से आई, तो इन्हीं बरमदज्यू की घरवाली ने सुना पूरे पटरंगपुर की अपने जान–पहचान की लुगाइयों को न्यूता कि आ के महारानी के दरसन कर जाओ करके।"[5] गोपाल डिप्टी की दुल्हन बिन्दु अंग्रेजी पढ़ी–लिखी आधुनिक स्त्री है। वह घर की साज–सज्जा पाश्चात्य रीति से कर उसका कायापलट कर देती है।

बिष्णुकुटी की आमा के कई बच्चे होते हैं। पहले दो बेटियां फिर तीन बेटे देवदत्त, अम्बादत्त और पदम। सबसे पहले आमा की दो बेटियाँ हैजे में एक ही रात में खत्म हो गईं। तत्पश्चात् उसके देवर चनिका अंधे हो गये। आमा पर अकेले बच्चों के पालन–पोषण का भार आ पड़ा क्योंकि पति हंसादत्त नौकरी के सिलसिले में बाहर रहा करते थे। आमा का संघर्ष अभी ख़त्म नहीं होता और उसका बड़ा बेटा बिन्दु की बेटी इन्दु से विवाह कर घर छोड़कर चला जाता है। आमा राजी–खुशी उसका ब्याह कर देती है। अम्बिया (अम्बा दत्त) अंग्रेजी फौज में भर्ती होकर जर्मनी के साथ युद्ध में मारा जाता है। सबसे छोटा पदम भी अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते हुए मारा जाता है। पदम की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी हेमा भी एक बच्चे को जन्म देकर क्षय रोग के कारण मर गई। आमा ने उसके बच्चे सुरेन्द्र का लालन–पालन किया। आमा की सबसे छोटी बेटी सुनैना विधवा होकर पीहर आमा के पास आ जाती है। धीरे–धीरे सभी बेटे आमा को

---

[5] पटरंगपुर पुराण, पृ. 55

छोड़कर चले जाते हैं और आमा अपनी बेटी की दो बेटियों और पड़पोते नरेन्द्र के पालन–पोषण की जिम्मेदारी उठाती है। कोई सुदृढ़ आर्थिक आधार न होने पर अपने कपड़े–गहने बेचकर वह किसी तरह घर का खर्च चलाती है और उन्हें पढ़ाती–लिखाती है। घर को संजोते–संजोते एक दिन वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है लेकिन अन्तिम समय में उसका कोई पुत्र उसके पास नहीं होता।उसकी मृत्यु का काम–काज उसकी बेटी की बेटियां देखती हैं। पहाड़ों से गये लोग कभी पहाड़ों में नहीं लौटते यह इस शहर और आमा के जीवन की कटु सच्चाई है।

पहाड़ी जन–जीवन और स्त्री

'पटरंगपुर' में पहाड़ी संस्कृति का चित्रण है। यहाँ के लोगों की अपनी परंपराएँ, मिथक, रीति–रिवाज एवं अंधविश्वास प्रचलित हैं। शहर के लोग जंगल–जमीन से विशिष्ट लगाव रखते हैं और उनमें देवताओं का वास मानते हैं। पहाड़ की धरती का रंग लाल होने के विषय में वहाँ के लोगों की मान्यता है कि कुम्भकरण, बाणासुर जैसे राक्षसों की मृत्यु यहीं हुई थी अतः उनके खून के कारण ही धरती का रंग लाल हो गया है। ये मिथकीय पात्र इस उपन्यास में कई जगह आये हैं। स्त्रियाँ देवदार वृक्ष को ईश्वर का वृक्ष मानती हैं एवं उसकी पूजा किया करती हैं। उनकी मान्यता है कि बिना ईश्वर की अनुमति लिए वृक्ष को काटने पर वनदेवता नाराज हो जाते हैं। "देवदार हुए वो, देवताओं की लकड़ी। ऐसे चूल्हे–भट्टी में झोकनें को चीड़ के छिलुके जैसे जो क्या हुए ? पहले पूजा करके, बण के देवतों से आज्ञा ले के घर की छत के लिए बस कुल्ल एक पेड़ काटा जाने वाला हुआ, फिर उसकी जगह करके दूसरा रोपा जाने वाला हुआ।"[6] शहर में पहली बार हाथी देखने पर औरतें 'जै गणेशौ', जै लम्बौदरों'[7] कहकर उसकी पूजा करती हैं और उसका गोबर घर लाकर अपने पूजाघर को लीपती हैं।

पटरंगपुर शहर के लोग बहुत ही खुशमिजाज और जिंदादिल हैं। यह प्रवृत्ति उन्हें विरासत में मिली है। शहर वासियों के अपने किस्से और गप्प मशहूर हैं जिन्हें यहाँ के लोग तुरंत गढ़ लिया करते हैं। इस प्रवृत्ति के पनपने का एक किस्सा प्रसिद्ध

[6] पटरंगपुर पुराण, पृ. 31
[7] पटरंगपुर पुराण, पृ. 31

है। चंद्रवंशी राजा के शहर में आने पर जुलाहे अपना कपड़ा रंगने का व्यवसाय शुरू करते हैं –

"इन्हीं जुलाहों ने यहाँ आकर राजाजी से कहा, कि जब पट्ट रंगने का मौसम आए तो रंग चोखा करने के लिए पूरे शहर में बेसिर–पैर की गप्प उड़ाई जानी चाहिए करके। सुना जितनी गहरी गप्प जमती थी उस साल उतना ही गहरा रंग रेशम पर चढ़ता था .....कोई कहे दिल्ली के शाहजहाँ बादशाह की दरबार की किसी नाचने वाली की घघरी की सींबन से आज दरबार में नाचते बखत अबीर–गुलाल निकला और फर्श पर उससे 'ॐ' जैसा लिखी गया, कोई कहे एक गाय ने बकरी का बच्चा जाया है जो होते ही संसकिरत बोलने लगा है।[8]"

इस तरह की झूठी–सच्ची खबरें शहर में गप्प का विषय बन जाती थी और तुरंत अफवाहों का बाजार गर्म हो जाता था। शहर में गप्प का एक रोचक किस्सा वहाँ पर वर्णित है जब 'वास–पर्व' में सोहन नाम का धोबी अचानक बीमार पड़ जाता है। बीमारी के कारण उसका पेट निकल जाता है। शहर में तुरंत अफवाह फैल जाती है कि उसने एक बच्चे को जन्म दिया है। शहर की औरतें उसके घर पूछ–ताछ के लिए पहुँच जाती हैं। सोहन धोबी की पत्नी से पूछती हैं कि "लौडा था कि लौंडिया"[9] कुछ देर तक तो उसकी पत्नी समझ ही नहीं पाती कि वे क्या पूछ रही हैं। समझने के पश्चात हंसते हुए बताती है कि उसके पेट में ट्यूमर था जिसका आपरेशन करके निकाला गया है। शहर की मजाक करने की पुरानी आदत थी सो सीधी–सादी औरतें ट्यूमर की बीमारी के बारे में कुछ जानती नहीं थी, सच बात जानने के लिए उसके घर पहुँच गई।

शहर के लोगों में पीढ़ी–दर–पीढ़ी मोहल्लावार नोंक–झोंक भी खूब प्रचलित है। इन मोहल्लों में आपसी प्रतिद्वन्द्विता इस कदर है कि एक मोहल्ला कोई कार्य करने की योजना बनाता है तो दूसरा तुरंत उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। उपन्यास के 'बिलायत पर्व' में लिलुआ नामक पात्र शहर से बाहर जाकर विदेश में पढ़ने के लिए

---

[8] पटरंगपुर पुराण, पृ. 14
[9] पटरंगपुर पुराण, पृ. 124

लोगों से आर्थिक मदद माँगता है तब शहर के प्रमुख परिवार बिक्टोरिया कॉटेज और विष्णुकुटी विरोध में आमने–सामने आ जाते हैं। एक पक्ष (विक्टोरिया कॉटेज) विदेश जाने की अनुमति देता है तो दूसर पक्ष (बिष्णुकुटी) ब्राह्मण धर्म का हवाला देकर विदेश जाने से मना कर देता है – "पर पटरंगपुर ठहरा जनम से पाल्टीबाज शहर। एक साथ एक जैसी राय कभी देने ही वाला नहीं हुआ। पहले हुए महर फड़प्यालों के घड़े, फिर बने तीन बूढ़े, चार चौथानी, पांच थो, छह धरिया। जनम से पाल्टियों में बंटा यह शहर। जब तलक पहले गुट्ट का जवाब आये, न आये, दूसरे गुट्ट का लिलुआ के पास जवाब आ गया, कि "तेरी इच्छा बिल्कुल ठीक है, अब बिलैती विद्या बिलैत जाकर पढ़े बिना नहीं हो सकता, अतः तू जा खर्चा हम देते हैं। कोई आपत्ति करेगा तो हम निबट लेंगे।"[10]

इस आपसी प्रतिद्वन्द्विता की गाज घर की औरतों पर भी गिरती है। बिष्णुकुटी की आमा से घर के बुजुर्ग साफ–साथ कह देते हैं कि अपने मायके अर्थात् बिक्टोरिया काटेज से उसका हमेशा के लिए संबंध खत्म हो गया। रो–धोकर भी आमा को यह बात माननी पड़ती है। नोंक–झोंक की यह प्रवृत्ति शहर की औरतों में भी खूब है। किसके घर कितना दहेज आया, किसने अपने घर की नई दुल्हन को कैसा गहना–कपड़ा दिया, यह सब शहर की औरतें, देखने–सुनने तुरंत चली जाती हैं। अगर वह सब खराब निकला तो तुरंत वहीं पर मीन–मेख निकालना शुरू कर देती हैं। आमा के विवाह के अवसर पर शहर की औरतें उसके गहनों को हाथ में रख–रखकर तौलती हैं कि कितना भारी है। आमा के साथ आई औरत इस पर उन्हें लताड़ती है तो वह कहती हैं कि ऐसे जेवर उन्होंने देखे नहीं इसलिए देख रही है। "सुना मुँदिखाई के बखत औरतों ने आमा के जेवर खैंच–खैचके हाथों–हाथ तौलने शुरू किये तो बिगड़ गई। औरतों ने कहा कि ऐसा जेवर देखा नहीं जभी तौल रहे हैं करके तो आमा बताती थी, उसने पट्ट से जवाब दिया तब "तराजू और बाट–बटखरे लेके काहे नहीं आयी फिर ?"[11] इसी तरह तितुली कैंजा पर्व में आमा की बड़ी बहू इन्दु अपनी देवरानी को

[10] पटरंगपुर पुराण, पृ. 47
[11] पटरंगपुर पुराण, पृ. 37

सोने की हल्की चेन मुँह दिखाई में देती है तो शहर की बाल–विधवा तितुली चट्ट से कहती है "अरी लोगों, जोर से सांस मत लेना नहीं तो जिठानी की ही चेन उड़ जावेगी।"[12]

शहर की औरतें दूसरे परिवार की देखा–देखी नये काम तुरंत करना शुरू कर देती हैं। इस काम में वह इतनी जल्दबाजी करती हैं कि उसका हानि–लाभ भी नहीं देखतीं। गोपाल डिप्टी का दहेज और तीयल देखकर वह भी दहेज और तीयल लेना–देना शुरू कर देती हैं। बिन्दु अपने घर के पुराने बर्तनों को बेचकर नये स्टील के बर्तन लाती है तो शहर की अन्य औरतें भी उसका अनुसरण करती हैं – "बिन्दु की करी शुरूआत के बाद जैसे पटरंगपुर के सारे पुराने घरों में पुश्तैनी बर्तनों के रातोंरात पंख निकल आये हों। खड़ाखड़ी उड़–उड़कर जैसे पीतल के, कांसे के, ताँबे के भारी–भारी देग, भड्डू, परातें और गंगाल देस को जाने लगे। ...इन्दु के दहेज का सुनकर सब ब्याहने वाली लड़कियों की माँओं को हाथ में खुजली जैसी हो गई। हम भी मुर्दबाद से गोपाल डिप्टी की घरवाली जैसा चमचमान दैज लेंगीं करके।"[13]

आपसी नोंक–झोंक और प्रतिद्वंद्विता के बावजूद 'पटरंगपुर' की औरतें बहुत दयालु और स्नेहिल हैं। एक–दूसरे के सुख–दुःख में वह सदैव साथ खड़ी रहती हैं। घर में एक नई चीज आने पर वह मुहल्ले की स्त्रियों को देखने के लिए आमंत्रित करती हैं। विक्टोरिया कॉटेज में इंग्लैंड की महारानी की फोटो आती है तो गोपाल की माँ सभी को उसे देखने के लिए अपने घर बुलाती है – "ताल घर चन्दा की आमा बताती थीं कि गजब की रंगीन फोटू हुई वो। तब तक पटरंगपुरियों ने वैसी कद्देआदम फोटू देखी ही नहीं ठहरी।"[14] इसी तरह शहर में पहली बार कैमरा आने पर उससे निकली तस्वीर को देखकर स्त्रियाँ बहुत हैरान होती हैं। उपन्यास का एक पात्र मोहन मोहल्ले की स्त्रियों को तीर्थस्थानों की फोटो खींचकर उन्हें देता है तो वे उससे बहुत खुश होती हैं कि चलो वास्तव में तीर्थस्थान नहीं देखा तो क्या हुआ फोटो में तो दर्शन

[12] पटरंगपुर पुराण, पृ. 106
[13] पटरंगपुर पुराण, पृ. 85
[14] पटरंगपुर पुराण, पृ. 55

कर लिया "मोहल्ले –भर की उन औजाईयों–चाचियों को, जिनने गाढ़े बखत उसकी माँ की मदद की ठहरी उसने वो फोटक मुफ्त में भी दीं, सुना। जनम–भर पूजा–पाठ के बखत मुहल्ले वालों ने उन तसवीरों में अक्षत–चंदन लगाकर उसे आशीष दिये ठहरे इसके बाद।"[15]

शहर की महिलाएँ विपत्ति पड़ने पर एक–दूसरे की मदद भी किया करती हैं। उनका आपसी प्रेम पुरुषों की प्रतिद्वन्द्विता के बावजूद खत्म नहीं होता था। आमा अपने घर के मर्दों द्वारा मना करने के बावजूद विक्टोरिया कॉटेज में बच्चा पैदा होने पर भौजाई से मिलने चली जाती है। विक्टोरिया कॉटेज की गोपाल की माँ भी आमा से प्रेम–व्यवहार रखती है–"पर विष्णु कुटी की आमा ने कभी नहीं भुलाया हो कि उनकी घर जचगी में कैसे ठाड़ी (खड़ी) चढ़ाई चढ़ के बरमदज्यू की दुल्हैणी विष्णुकुटी आके उन्हें सिंगल (एक पकवान विशेष) खिला जाने वाली हुई; कि आ हाये बे–माँ की बच्ची है करके।"[16] आमा भी गोपाल की माँ के प्रति उसके बेटे–बहुओं के मुँह फेर लेने पर उसके पास खाने–पीने की चीजों को लेकर पहुँच जाया करती है – "आमा सदा इतवार–इतवार छुपा के गुड़ के खजूर हुए, पत्ते में लिपटी सिगौड़ी (कलाकंद) हुई, घर के पके केले हुए, ये सब उन्हें खिला जाने वाली हुई।"[17]

अपने से गरीब घर की औरतों के प्रति ये स्त्रियाँ सहृदयता एवं दया का परिचय देती हैं। घर के मर्दों से छुपाकर उनकी आर्थिक मदद करती रहती हैं। दीपु की इजा गरीब परिवार की स्त्री है। वह मुँह से थोड़ी मुँहफट है लेकिन फिर भी मुहल्ले की अन्य स्त्रियाँ उसकी मदद करती हैं। "दया के मारे पीछे के रास्ते बुला–बुला के खाते–पीते घरों की गृहस्थ औरतें निरंतर पुराने कपड़े, तो कभी साबुन या घर का साग–हाग वगैरा दिपुआ की इजा को देते रहने वाली हुई।[18] विक्टोरिया काटेज की इन्दु भी अपने आया द्वारा उसका अपमान होने की खबर पाकर, उसे अपने घर बुलाकर माँफी माँगती है।

---

[15] पटरंगपुर पुराण, पृ. 97
[16] पटरंगपुर पुराण, पृ. 64
[17] पटरंगपुर पुराण, पृ. 64
[18] पटरंगपुर पुराण, पृ. 68

प्रचलित रीति–रिवाज, लोकमान्यताएँ एवं अंधविश्वास– पटरंगपुर में अधिकांश परिवार ब्राह्मण जाति से संबंधित हैं। अतः उनके रीति–रिवाज सनातनी ब्राह्मण कर्मकांडों पर आधारित हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक ब्राह्मणों में जितने संस्कार होते हैं उनमें से कुछ के दर्शन हमें इस उपन्यास में होते हैं। पुत्र के जन्म पर उत्सव का रिवाज प्रचलित है जबकि पुत्री के जन्म पर उत्सव करने की मनाही है। इसके पीछे की मान्यता यह है कि लड़कियों के जन्म पर उत्सव करने से घर में अत्यधिक लड़कियां जन्म लेती हैं जिसे भारतीय समाज में अच्छा नहीं समझा जाता "जातक कर्म तो लड़कों के ही होने वाले हुए उन दिनों, लड़की हुए में तो बस पूजा जैसी करके नमो–नमो। बड़े लोग कहने वाले हुए, कि लड़की हुए में ज्यादे उत्सव करो तो लड़किया ही लड़कियाँ होती हैं वंश में।"[19]

पुत्र के जन्म के छः माह व्यतीत हो जाने पर अन्न प्राशन संस्कार होता है। इसमें प्रथम बार पुत्र को अन्न ग्रहण कराया जाता है। इसी अवसर पर पुत्र के सामने सभी वस्तुएँ रखकर उससे कोई वस्तु उठवाई जाती है। पुत्र जिस वस्तु को उठाता है उसके आधार पर आगे चलकर उसकी रुचि कैसी होगी इसका अनुमान किया जाता है। आमा के बेटे पदम के अन्नप्राशन संस्कार के अवसर इस रिवाज का उल्लेख है – "पदम की पासनी[20] में सुना बड़ा तमाशा हुआ। छह महीने का हुआ पदम, उसे बैठाकर, पहाड़ में जैसा करते हैं, वैसे सब प्रकार की चीज बस्त उसके चारों तरफ फैला दी गई। खिलौने हुए, रुपये हुए, मिठाई हुई, ताला–चाभी, कलम–दवात, चक्कू सब ठहरा। देखें क्या उठाता है ? करके सब देख रहे ठहरे। तब तक ल्याप से पदम ने चक्कू जो उठा लिया।"[21]

सब सोचते हैं कि आगे चलकर वह क्या बनेगा? आमा के देवर चनिका कहते हैं "यह ठहरा सीमल्टिया पाण्डे, पुरखों ने चन्द राजाओं की रसोई सम्हाली ठहरी, सो यह

---

[19] पटरंगपुर पुराण, पृ. 45
[20] पटरंगपुर पुराण, पृ. 102 'अन्नप्राशन'
[21] पटरंगपुर पुराण, पृ. 102

भी स्यात् रसोईयाँ बनेगा।"[22] किन्तु, बाद में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते हुए चाकू से उसकी हत्या हो जाती है तब औरतें समझ जाती हैं कि उसने चाकू क्यों उठाया था।

पहाड़ों में प्रचलित एक अन्य रिवाज 'रत्याली' का जिक्र आया है। यह रिवाज विवाहोत्सव में पुत्र की बारात विदा करके घर की औरतें रात्रि जागरण करके मनाती है। औरतें मर्दों की वेश–भूषा धारण करके किसी पात्र को चुनकर उसकी नकल उतारती हैं। यह रिवाज हास्य–प्रधान होता है। विक्टोरिया कॉटेज में गोपाल डिप्टी के विवाह के दिन औरतों द्वारा 'रत्याली' मनाने का उल्लेख है – "आमा ने, सुना, अंगरेज साहब की ऐसी अद्‌भुत नकल लगायी थी रत्याली की बैठक में कि औरतों के हँसते–हँसते पेट में बल पड़ गये।"[23]

पहाड़ों में विवाह के अवसर पर तीयल देने का रिवाज प्रचलित है। यह पहाड़ों में संभवतः दहेज की प्रथा से मिलती–जुलती प्रथा है। इसका उल्लेख दहेज के संदर्भ में आया है। इसमें कन्या–पक्ष द्वारा वर–पक्ष के रिश्तेदारों को उपहार स्वरूप गहने–कपड़े दिये जाते हैं बिन्दू के विवाह के अवसर पर उसके घरवालों द्वारा वरपक्ष को तीयल दियेजाने का जिक्र है–"वैसे ही बर के रिश्तेदारों के लिए चालीस थान तीयल ठहरे।...तो ब्याह –शादी में तीयल देने का एक नयी सैट का कायदा–कानून शुरू हो गया ठहरा पटरंगपुर में। चाची, ताई, बुबू, सास, उनकी बड़ी बहुए, जेठी लड़कियाँ सबके नाम की अलग से साड़ी जम्फर आये ठहरे तीयल में।"[24] इसी से संबंधित पटरंगपुर में एक कहावत प्रचलित हो गई – "टूरिस्ट तो आए पटरंगपुर में ताल के छजने (सजने) से, और तीयल–दहेज के लटके आये पटरंगपुर में गोपाल डिप्टी की बारात का बैण्ड बजने से।"[25]

शहर में स्थानीय देवी–देवता भी हैं जिनके बारे में लोगों का विश्वास है कि वे शहर की रक्षा करते हैं। मान्यता है कि ये देवी–देवता जब प्रसन्न होते हैं तो शहर में सुख–समृद्धि आती है और जब वे नाराज होते हैं तो विपत्ति आती है। ऐसे ही एक

---

[22]पटरंगपुर पुराण,पृ.103
[23] पटरंगपुर पुराण,पृ.60
[24] पटरंगपुर पुराण, पृ.61
[25] पटरंगपुर पुराण, पृ.61

स्थानीय देवता–गणानाथ हैं। पटरंगपुर के लोगों के लिए वह एक जाग्रत देवता हैं। गोरखाओं और अंग्रेजों के युद्ध के समय गणानाथ मंदिर में गोरखाओं के बादशाह द्वारा चढ़ाई हुई अशर्फियाँ शिवलिंग से फिसलकर नीचे गिर गई। अतः लोगों को विश्वास हो गया कि भगवान गणानाथ गोरखाओं पर कुपित हैं अब युद्ध में गोरखाओं की विजय नहीं होगी।

इसी तरह एक देवी–स्थान का भी उल्लेख है। शहर के लोग रात में उस देवी–स्थान से गुजरते हुए भयभीत रहते है। यह देवी–स्थान किसी लाटी–माता का है जो बहुत पुराने समय में कनफटा जोगियों के साथ शहर में आयी थीं। उनकी समाधि के बाद वहाँ पर एक मंदिर बन गया। "आमा बताती थी, चार बार जोरदार भूकम्प आये शहर में, आठ बार मुट्‌ठी बरोबर ओले पड़े, सोलह बार चौमासे में फनफन कर बाढ़ का पानी भी जंगल में छूटा, पर लाटी माता की समाधि में ज़रा टेढ़ी होने को छोड़कर बाल भर दरार तक नहीं आयी।"[26]

पहाड़ों में स्त्रियों के संबंध में तरह–तरह की लोक मान्यताएँ एवं अंधविश्वास प्रचलित हैं। पुत्री के जन्म को लोग अशुभ मानते हैं और पूरा जतन करते हैं कि पुत्रियाँ जन्म न लें। उपन्यास में लक्ष्मी (रामदत्त की पुत्री) की बेटियाँ पैदा होती हैं तो उसकी सास कहती है कि "जब लड़की होती है, तो धरती सात अंगुल रसातल को धंस जाती है।"[27] बेटी के पैदा होने पर माँ को ताने भी सुनने को मिलते हैं। चंदा (लक्ष्मी की बेटी) पुत्री को जन्म देती है तो उसकी सास बहुत बुरा मुँह मनाती है। वह उसे ताना मारते हुए कहती है – "लड़का हुआ होता तो सोने का हार देती तुझे।"[28]

घर में बेटियों के आगमन पर परिवार की बूढ़ी–बुजुर्ग औरतें निराश हो जाती हैं। नवजात बच्ची के जन्म के बाद घर में किसी पुरुष की मृत्यु हो जाये तो उसका कारण उसे ही ठहराया जाता हैं चंदा जैसे ही एक पुत्री को जन्म देती है वैसे ही उसका पति मर जाता है। उसकी सास पुत्री के मूल नक्षत्र को पिता की मृत्यु का

---

[26] पटरंगपुर पुराण, पृ. 20
[27] पटरंगपुर पुराण, पृ.17
[28] पटरंगपुर पुराण, पृ.33

कारण बतलाती है "सास ने सुना, सिर पीट लिया कि 'लौंडिया का मूल नक्षत्र ही बाप को खा गया।"[29] चंदा भी अपनी पुत्री को ही अपने पति की मृत्यु का कारण समझती है।

इस तरह की कुछ अन्य मान्यताएँ भी प्रचलित हैं जैसे "अति चौड़ा कपाल औरतों में अच्छा नहीं होता, कहते हैं वैधव्य लगता है। अति लम्बे बाल भी औरतों में अच्छे नहीं होते लक्षिमी आमा के जैसे। असल में रूप दुसमण जैसा ही होने वाला हुआ औरतों में।"[30]

औरतों के सौभाग्य के लिए उनका ज्यादा हंसना–बोलना भी अच्छा नहीं समझा जाता। पहाड़ी औरतें मानती हैं कि इससे बाद में औरतों को बहुत दुःख उठाना पड़ता है। अतः हरसंभव वह कोशिश करती हैं कि घर की बहू–बेटियाँ अधिक हँसे–बोलें नहीं – "आज भी औरतों से पटरंगपुर में कहते हैं कि ज्यादे मत हंसो, जितना हंसोगी उतना ही रोना पड़ेगा, करके! अहा रूप की तरह ही हंसना भी काल ठहरा स्त्री के लिए!"[31]

विवाह के दिन रत्याली में पूजाघर में वर–वधू के अच्छे सौभाग्य के लिए पहाड़ की स्त्रियाँ दीपक जलाती हैं। उनकी मान्यता है कि यदि दीपक बिना बुझे रात–भर जलता रहता है तो वर–वधू का जीवन सुखमय होता है। यदि किसी तरह वह बुझ जाता है तो स्त्रियाँ उसे अशुभ मानती हैं। पदम के विवाह के दिन जलाया गया दीपक बुझ जाता है तो उसकी बहन सुनैना किसी अनिष्ट की आशंका से दहल जाती है।

"उस बखत सुनैना ने किसी को कानोंकान खबर नहीं होने दी, आया तक को नहीं कहा, चुपचाप दुबारा जला दिया – पर भीतर से उसके तभी कुछ त्याक्क जैसी हो गई थी। इजू! थे तो अच्छा शकुन लगुन नहीं हुआ करके।"[32]

शहर में एक तालाब के बारे में अंधविश्वास प्रचलित है कि वह हर साल किसी–न–किसी की बलि जरूर लेता है। तालाब में प्रतिवर्ष कोई–न–कोई जाकर डूब जाता है। इसी को लेकर लोगों में अंधविश्वास फैल गया कि तालाब बलि चाहता है।

---

[29] पटरंगपुर पुराण, पृ. 38
[30] पटरंगपुर पुराण, पृ.38
[31] पटरंगपुर पुराण, पृ. 103
[32] पटरंगपुर पुराण, पृ. 106

हर वर्ष कोई स्त्री, या कोई विद्यार्थी जाकर डूब मरता है तो शहर के लोग निश्चिंत हो जाते हैं कि तालाब ने बलि ले ली है; अब कोई खतरा नहीं है। इस तरह के अन्य कई प्रसंग आये हैं जो शहर के लोगों में ख़ासकर स्त्रियों में प्रचलित अंधविश्वस को दर्शाते हैं। शहर में एक गूंगा व्यक्ति है। औरतों का मानना है कि उसे कोई देवी सिद्ध है। वह जो बतलाता है वह हमेशा सत्य होता है। शहर में कोई भी बहू–बेटी गर्भवती होती है तो उस गूंगे को बुलाकर पूछा जाता है कि बेटा होगा या बेटी? गूंगा हाथ के इशारे से बतला देता है कि बच्चा बेटा है या बेटी ? दो बेटियों के जन्म के बाद आमा जब गर्भवती होती है तो उसे बुलाया जाता है। घर में खुशी की लहर दौड़ जाती है जब गूंगा प्रमोद हाथ के इशारे से बताता है कि आमा के पेट में लड़का है।"[33]

प्रमुख स्त्री समस्याएँ – पहाड़ी क्षेत्रों में स्त्रियों की कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जो विशेषकर वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों की देन है। इसके बारे में कुमुद शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आधी दुनिया का सच' में लिखा है –

"पहाड़ी और रेगिस्तानी इलाकों की स्त्रियां घरों की मानसिक यातनाओं के अलावा दूसरी मार भी झेलती हैं। उनकी जिंदगी सुबह–शाम ईंधन के लिए लकड़ी का इंतजाम करने, मीलों दूर जाकर सिर पर इकट्ठे दो–तीन घड़े पानी लाने तथा परिवार के लिए रोटी जुटाने में ही गुजर जाती हैं। जल्दी ही उनका स्वास्थ्य जवाब देने लगता है और वे खून की कमी के कारण रोगग्रस्त हो जाती हैं।"[34]

कुमुद शर्मा ने जिन परेशानियों को उल्लेख किया है उसे हम पटरंगपुर की स्त्रियों के हवाले से देख सकते हैं। एक उदाहरण है कि ब्राह्मण परिवारों में छुआछूत का प्रचलन है अतः घर–परिवार की स्त्रियों को ही पानी लेने दूर–दूर तक जहाँ पानी के स्रोत है, वहाँ जाना पड़ता है। पहाड़ी क्षेत्रों में पानी की कमी नहीं होती लेकिन पथरीली जमीन के कारण पानी के स्रोत तक नल–लगवाना मुश्किल कार्य होता है। चढ़ाई, उतार की वजह से पानी के घड़े लेकर स्त्रियों को चढ़ना–उतरना पड़ता है। उनका स्वास्थ्य चाहे जैसा हो उन्हें ही यह काम करना होता है। ऐसे में उनका स्वास्थ्य

[33] पटरंगपुर पुराण, पृ. 45
[34] कुमुद शर्मा, आधी दुनिया का सच, सामयिक प्रकाशन संस्करण 2011, पृ. 18

और खराब हो जाता है। गर्भवती होने पर मुश्किल और बढ़ जाती है। पहाड़ों में स्वास्थ्य सुविधाएँ भी मुश्किल से ही मिलती हैं इसलिए कोई भी बीमारी या महामारी फैलने पर स्त्रियाँ सर्वाधिक प्रभावित होती है। आमा बताती है कि "शायदै कोई घर होगा – उन दिनों पटरंगपुर में, जहाँ कोई–न–कोई जवान बहू चल न बसी हो, कोई फेफड़ों के रोग से गई, कोई अतिसार में, किसी का परसूत बिगड़ गया ठहरा।"[35]

पुराने समय में (स्वतंत्रता–प्राप्ति से पहले) पहाड़ के घरों में शौचालय और स्नानघर नहीं हुआ करते थे। उस समय नित्य क्रिया के लिए स्त्रियों को बाहर जाना पड़ता था। यह काम मुँहअंधेरे उठकर करना होता था अन्यथा दिन में पुरुषों से पर्दा–प्रथा के कारण वह बाहर नहीं निकल पाती थीं। इस समस्या का वर्णन पटरंगपुर पुराण में यों है "उस जमाने में बामणों के घर के भीतर संडास बन जाना बहुत बड़ी बात हुई। नहीं तो जब से शहर बसा था तब से औरतों को झुटपुटे के टैम लोयले के दिशा–जंगल जाना हुआ। लाख जरूरत हो, आंगन में बड़े लोग बैठे हों तो रूके ही रहना हुआ उन्हें। या फिर पीछे के चुभने वाली सिसूंण घास के रास्ते से नीचे वाले नौले के पीछे उतरकर जाना हुआ। कितने बार तो भले घर की औरतों को आते–जाते छल[36] लग जाता था, घंटों दाँत कस के बेहोश पड़ी रह जाती थी।"[37]

आजादी से पहले पटरंगपुर में बाल–विवाह, बहु–विवाह, अनमेल विवाह जैसी कुप्रथाएँ भी प्रचलित थीं। पत्नी की मृत्यु के तुरंत पश्चात् लोग शादियाँ रचा लेते थे। प्रेम–विवाह समाज में बिल्कुल अस्वीकार्य था। विवाह घर के बड़े–बूढ़े ही तय कर लिया करते थे और बच्चों से उनकी राय कभी नहीं पूछी जाती थी। उपन्यास में हीरू और मोहिनी नाम के युवक युवती एक–दूसरे से प्रेम करते हैं। परिवार के सदस्यों को जैसे ही इस प्रेम–कहानी का पता चलता है लड़की को दूसरी जगह भेज किसी अन्य लड़के से उसका विवाह कर दिया जाता है।

---

[35] पटरंगपुर पुराण, पृ. 99
[36] पटरंगपुर पुराण, पृ. 70
[37] पटरंगपुर पुराण, पृ. 70

इस उपन्यास में पहाड़ की गरीब निम्नवर्ग की स्त्रियों का उल्लेख न के बराबर है। केवल एक जगह उनका जिक्र आया है जहाँ अंग्रेज सिपाहियों द्वारा गरीब नवयुवतियों के यौन–शोषण की बात कही गई है। पहाड़ों में गरीब निम्नवर्गीय लड़कियों का यौन–शोषण वहाँ की एक प्रमुख समस्या है। कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ तो फिर भी बच जाती थी लेकिन गरीब घर की औरतें यह सब सहने के लिए मजबूर थीं। अंग्रेज सैनिक अपने घर के लिए दाना–पानी के जुटाने निकली युवतियों को अपनी हवस का शिकार बना लिया करते थे।

"औरतों पर भूखे बाज की तरह झपटने वाले हुए टामी। उनके डर से पानी भरने के नौले सुनसान हो गये, औरतों का शनीचर मंगल मंदिर जाना छूट गया, बढ़ती उमर की लड़कियों का छत पर बाल सुखाना बन्द हो गया। पर गरीब घर की छोटी जात वालों के वहाँ की बेचारी कुटुम्बी औरतों का बाहर निकले बिना कैसे निबाह होता ? जानवर चारा खाना नहीं ही छोड़ने वाले हुए ठहरे, बच्चों और मर्दों को नहाने–खाने को पानी चाहिए ही ठहरा, चूल्हे के लिए लकड़ी रोज की ही ठहरी। इष्ट का जाप करके बेचारियाँ अपने हंसिए–रस्सी संभाल के निकलने वाली हुई। टामियों के बूटों की खड़ाप्प–खड़ाप्प सुनी नहीं कि थर–थर काँपती, जिसे जहाँ ठौर मिले, छुप जाने वाली हुई, कोई पानी की टंकी के नीचे, कोई पत्थर के ढोके के पीछे।"[38]

परन्तु रोज–रोज का यह बचाव संभव नहीं था। वे वहशियों के हाथ में पड़ ही जाया करती थीं। इस भयानक यौन–शोषण की अनिवार्य परिणति होती थी अनचाहा गर्भ। लड़कियां गर्भवती हो जाती थीं फिर घरेलू उपचारों द्वारा गर्भ गिराने की चेष्टा की जाती थी – जिसमें कई बार गर्भवती की जान भी चली जाया करती थी। अन्यथा वह मातृत्व का भार उठाने को मजबूर हो जाती थीं। आजादी से पहले यह कुकृत्य अंग्रेज किया करते थे और आजादी के बाद पहाड़ों पर घूमने जाने वाले पर्यटक अथवा भारतीय सेना के जवान किया करते हैं। इस तरह पहाड़ी स्त्रियों का यौन–शोषण वहाँ की एक मुख्य स्त्री संबंधी समस्या है।

---

[38] पटरंगपुर पुराण, पृ. 78

आजादी के बाद स्त्री की पारंपरिक समस्याओं में बहुत बदलाव आया। इस उपन्यास में हम इन बदलावों को हम लक्षित कर सकते हैं। बाल–विवाह, बहु–विवाह में कमी आई। आमा की बहुओं की उम्र विवाह योग्य थी। वे काफी परिपक्व और पढ़ी–लिखी बहुएँ हैं। बेटियों की पढ़ाई पर भी ध्यान दिया जाता है। सुनैना की बेटियाँ सावित्री–गायत्री उच्च शिक्षा ग्रहण करती हैं। समाज में प्रेम–विवाह भी स्वीकार्य होने लगते हैं। आमा के देबिया और हरीश ने प्रेम–विवाह किया। विक्टोरिया कॉटेज के लड़के भी प्रेम–विवाह करते हैं। संयुक्त परिवार के टूटने से स्त्रियों को कठोर शारीरिक श्रम से मुक्ति मिलती है। किन्तु, समय के बदलाव से नई समस्याएँ भी सिर उठाने लगती हैं। पहाड़ों से जंगल कटने लगते हैं और जंगल पर आधारित व्यवसायों में भारी कमी आ जाती है। रोजगार की तलाश में पहाड़ी पुरुष मैदानों की तरफ रुख करने लगते हैं। अब घर–परिवार की जिम्मेदारी औरतों पर आ पड़ती है।

आमा के पति हंसादत्त पहाड़ से बाहर नौकरी करते हैं। आमा घर–परिवार पालने के लिए शहर में ही रूक जाती है। पांच बच्चों और अंधे देवर चनिका की जिम्मेदारी उसी के ऊपर है। बेटे बड़े होकर नौकरी पा शहर से चले जाते हैं और वह अकेली बेटी के साथ बच्चों को पालने पर मजबूर है। बाद में बेटे उसकी आर्थिक मदद भी नहीं करते। यह नयी समस्या केवल आमा की नहीं पहाड़ के हर परिवार की समस्या है। स्त्रियों की भौतिक सुख–सुविधाओं पर बच्चों का ध्यान न के बराबर है। आर्थिक तंगियों से जूझती महिलाएँ किस तरह अपना पेट पालती है और बच्चों–बूढ़ों का ख्याल रखती है यह सोचनीय है।

प्रमुख स्त्री चरित्र :

'पटरंगपुर पुराण' में प्रमुख स्त्री–चरित्र हैं – आमा और बिन्दु। इनके अतिरिक्त अन्य स्त्री चरित्र है – लक्ष्मी, चंदा, चम्पा बुबू, बरमदज्यू की घरवाली, तितुली कैंजा, सुनैना, इन्दु, हेमा, गंगा, सावित्री, गायत्री आदि। चूँकि उपन्यास लम्बे कालखण्ड को लेकर चलता है अतः स्त्री–पात्रों के चरित्रों में पीढ़ी अन्तराल का अन्तर भी दिखाई पड़ता है। आमा की पूर्वजाएँ बिल्कुल पारंपरिक और धार्मिक हैं जबकि आमा के बाद की बहुएँ/लड़कियाँ पढ़ी–लिखी आधुनिक विचारों वाली स्त्रियाँ हैं। लक्षिमी की सास,

चन्दा की सास एवं स्वयं आमा की सास चम्पा बुबू एक पारंपरिक भारतीय सास की छवि प्रस्तुत करती हैं जो बहुओं को सताने का कोई मौका हाथ से नहीं छोड़ती। बहू के द्वारा पुत्री पैदा करने पर उसे ताने मारना, उसे उपेक्षित करना तीनों की सासें अपना परमधर्म समझती हैं। धार्मिक कर्मकांडों और छुआछूत का पूरा ख्याल रखती हैं। आमा की सास बाएं हाथ से पानी का गिलास उठा लेने पर उसे डपटती है कि उसने पानी अशुद्ध कर दिया। आमा के मायके से कोई वस्तु या मिठाई आने पर वह उसे न देकर ताले–चाभी में बंद कर घर में रख देती है। ऊपर से उसे ताने मारती है कि "ये छोड़ गये समधी जी अपनी लाडली कने सालम की बासमती के बोरे। तूने ही चुपचाप कहा होगा मैके के खबरिये को, कि लाल भात परसती है मेरी राँड सास है ?"[39]

आमा से कोई गलती हो जाने पर वह उसके मायके का ताना देती है। भयंकर छूत–छात मानती है लेकिन इतनी व्यवहारिक है कि बिल्ली दूध को जूठा कर दे तो कभी फेंकती नहीं। उपन्यास में इन सासों की बहुएं डरी–सहमी सी रहती हैं। कठिन परिस्थितियों में अपने धैर्य का परिचय देती हैं और सास की बातों का कभी जवाब नहीं देतीं। रामदत्त की पत्नी पति के छोड़ देने के बावजूद हिम्मत नहीं हारती और अपनी बेटी का पालन–पोषण भली–भांति करती है। लक्षिमी का विवाह स्थिति के अनुरूप अच्छे घर में होता है जहाँ वह सुखी जीवन बिताती है। आमा के पहले की सभी स्त्रियाँ कर्मकांडी, पुत्रवादी और तरह–तरह के शगुन–अशगुन, मिथक, अंधविश्वासों में यकीन रखने वाली परंपरावादी स्त्रियाँ हैं। पितृसत्ता के नियमों और आदर्शों से संचालित ये स्त्री–पात्र स्त्री जाति के प्रति घृणा फैलाने और समाज में पुरुष की श्रेष्ठता को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। निःसंदेह, ऐसा वह स्त्री–चेतना के अभाव में करती हैं जो उनके समय की हकीकत है। इन स्त्री पात्रों से हमें 20वीं सदी के पहले की भारतीय –स्त्रियों की सोच और उनके मन–मस्तिष्क की बनावट के बारे में पता चलता है।

---

[39] पटरंगपुर पुराण, पृ. 40

आमा के समय तक उपन्यास में ऐसे ही स्त्री चरित्र आते हैं लेकिन इसके बाद स्थितियों में काफी परिवर्तन आता है। पहाड़ों की पुरानी परंपराएँ तेजी से बदलने लगती हैं जिससे वहाँ का स्त्री–समाज भी परिवर्तित होता है। अंग्रेजों के आगमन के बाद आधुनिकता पहाड़ी समाज में प्रवेश करने लगती है। इससे वहाँ पर परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्व में संक्रमण का दौर शुरू होता है। आमा इसी संक्रमण के दौर की स्त्री है। उसके चरित्र में परंपरा और आधुनिकता का विचित्र मेल है। एक तरफ तो वह परंपरा का निर्वाह करती दिखती है तो दूसरी तरफ आधुनिक चीजों को ग्रहण भी करती है। जब उसकी सास उसे किसी बात को लेकर बोली–ठोली मारती है तो वह तुरंत उसका जवाब दे देती है लेकिन समझदारी के साथ सास के साथ अपने संबंधों का निर्वाह करती है। एक बार किसी कारणवश उसके ससुर उसके मायके आने–जाने पर रोक लगा देते हैं तो वह रो–धोकर अपना विरोध जताती है। इस पर भी उसके घरवाले नहीं मानते हैं तो एक दिन वह चुपके से विक्टोरिया कॉटेज चली जाती है। वह यह विद्रोह तो कर देती है लेकिन इसका खामियाजा उसे तुरंत मिलता है। सुसर उसे साफ–साफ कह देते हैं कि इस घर के लिए वह मर गई और वह अब अपने बेटे का दूसरा विवाह करेंगे। आमा डर जाती है। बुजुर्गों के समझाने पर ससुर इस बात के लिए राजी हो जाते हैं कि उसका घट श्राद्ध कर ही उसे घर में वापस बुलाया जायेगा। बिचारी आमा की मदद करने कोई नहीं आता और घटश्राद्ध की क्रिया पूरी की जाती है। उसका नाम बदलकर उसे घर में प्रवेश दिया जाता है।

"सो पांच बच्चों की महतारी आमा को फचाक से घड़ा फोड़कर पितर बनाया गया। खीर–खाजे के भात से उनके नाम का तिल जौ के साथ पिंडदान हुआ, तर्पण, तिलांजलि हुई। तब जो पुनर्नामकरण करके तुलसी विवाह हुआ, और फिर जो वह पुनः विष्णुकुटी वालों की बहू हुई।"[40]

इस क्रिया–कलाप से आमा को बहुत मानसिक यातना मिली लेकिन वह असहाय और बेबस थी। अन्त तक उसे अपने अपमान की पीड़ा कचौटती रही। इस

[40] पटरंगपुर पुराण, पृ. 50

सम्पूर्ण घटनाक्रम में उसके विरोधी और विद्रोही तेवर का पता चलता है उस समय स्त्रियों की चेतना में आ रहे बदलाव का सूचक है। आमा का विद्रोही तेवर समय के साथ और प्रखर होता है। अपने घटश्राद्ध के समय वह असहाय थी अतः विरोध न कर सकी। वह जानती थी कि मान–मर्यादा के नाम पर घर के बुजुर्ग उसकी एक बात नहीं सुनेंगे लेकिन बाद में ऐसा कोई मौका आने पर वह डरती नहीं है और गलत बात का सदैव विरोध करती है। आजादी के बाद पटरंगपुर शहर में राशन की दुकान वाले शहर के लोगों को तेल–राशन न बाँटकर चोरी में बेच देते हैं और लोगों से कह देते हैं कि शहर में तेल–राशन बाहर से नहीं आ रहा है। आमा तुरंत अपने पड़पोते नरेन्द्र से कहलवाती है कि वह कलक्टर को चिट्ठी लिखवायेंगी और शिकायत करेंगी कि 6 महीने से शहर में राशन तेल नहीं आ रहा। दुकानदार यह सुनकर घबरा जाता है और तुरंत उनके घर मिट्टी का तेल भिजवाता है। आमा तेल लेने से इनकार कर देती है और कहती है "दुकानदार से कहना, अपने सर को अच्छी तरह इससे भिगाकर आग लगा ले। पटरंगपुरियों के घरों में भात उबालने को सूखी घास तक नहीं, तो आमा क्या इस्टोभ पर पूरी पकायेगी।"[41]

इसी तरह एक अन्य स्थल पर आमा दहेज की प्रथा का पुरजोर विरोध करती है और इस प्रथा के बढ़ने पर उसके साथ आगे आने वाली समस्याओं की तरफ इशारा करती है। आमा दूरदर्शी महिला है। वह दहेज के पीछे की मनोवृत्ति को पहचान जाती है, शहर में धीरे–धीरे दहेज का प्रचलन बढ़ रहा है। बिन्दु के दहेज को देखकर शहर की औरतों की आँखें चुँधिया जाती हैं। वह भी अपने बेटे के दहेज में वैसा ही धन–दौलत लेने की कामना करती हैं। दहेज कुलीन परिवारों का दिखावा है। वह समाज में ऐसे परिवारों की प्रतिष्ठा और सम्मान प्रदर्शित करने का एक तरीका है। इस दिखावे की आंच छोटे एवं निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के लिए घातक है। आमा शहर की औरतों को सचेत करती है – "अभी अपनी–अपनी तीयलों को लेके खुश हो रहे हो, अपनी लड़कियों के बखत सर पर हाथ रखके रोओगे।"[42] आमा इस दिखावे के चक्कर

[41] पटरंगपुर पुराण, पृ. 15
[42] पटरंगपुर पुराण, पृ. 62

में कभी नहीं पड़ी और उसने अपने बेटे–बेटियों के विवाह में दहेज–तीयल लेने–देने से साफ इन्कार कर दिया।

आमा के जीवन में आये झंझावातों ने उसे अनुभवी, परिपक्व और प्रौढ़ बना दिया है। उसका बचपन सास की छत्र–छाया में बीता था जिसकी कठोरता को सहकर वह पर्याप्त सहनशील हो चुकी थी। बेटियों की अकाल–मृत्यु, बेटे एवं बहु की मौत एवं बड़े बेटे–बहू की उपेक्षा बावजूद वह हिम्मत और हौसला रखती है और पोते का पालन–पोषण एक माँ की तरह करती है लेकिन वह भी उसे छोड़कर चला जाता है। वह अपने बच्चों की खुशियों में वह सदैव उनके साथ रहती है और उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करती है। उसके बेटे एक बार घर छोड़कर चले जाते हैं तो दोबारा उसकी खोज–खबर लेने कभी नहीं आते। आमा कभी अपने बेटों से शिकायत नहीं करती। सुरेन्द्र (आमा का पोता) बाहर जाकर विवाह की सूचना चिट्ठी से आमा भेजता है। आमा उसके कृत्य से बहुत दुःखी होती है लेकिन फिर भी मुहल्ले की स्त्रियों को बुलाकर मिठाई बांटती है और छोटा–मोटा उत्सव करती है।

आमा के पति की मृत्यु के पश्चात् बेटों के भी निरपेक्ष हो जाने पर घर की आर्थिक स्थिति डँवाडोल हो जाती है। सुरेन्द्र के समय ही उसे पूर्वजों की सम्पत्ति और अपने गहने–कपड़े बेचकर उसकी तथा बेटी की बेटियों की शिक्षा की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है लेकिन अपने बेटों के आगे मदद के लिए हाथ नहीं फैलाती "जब सुरेन्द्र भी पढ़ाई के लिए प्रयाग शहर जाने वाला था, तब सुना, आमा ने अपना रहा–सहा गहना पत्ता भी बेच दिया। करना ही पड़ने वाला हुआ हो। आत्मसम्मानी घोर ठहरी दोनों माँ–बेटी। वैसे तो देबिया–बिन्दु भी तब प्रयाग में ही ठहरे, पर आमा कहने वाली हुई कि घर पर रहकर बच्चों की पढ़ाई ठीक से नहीं होगी। इसलिए होश्टल में डाला है तीनों को। समझदार हुई आमा, बेइज्जती रत्ती–भर भी बरदाश्त नहीं हो सकने वाली हुई उन्हें। और खुद चाहें पेट पर पट्टी बांध के बैठी होंगी दोनों माँ–बेटी, पर मेल–मुलाकातियों के लिए चाय और चोखी नमकीन–मिठाई सदा रहने वाली हुई उनके

यहाँ।"[43] आमा अपने बेटों की मान–मर्यादा का सदैव ख्याल रखती है और पारिवारिक झमेलों को किसी के सामने नहीं खोलती। जीवन के अन्तिम समय में सुरेन्द्र का बेटा नरेन्द्र माँ–बाप को छोड़कर उसके पास आ जाता है और अंत तक वही उसके साथ रहता है।

आमा समय के साथ बदलने वाली स्त्री है। वह उतनी कर्मकांडी नहीं है जितनी की उसकी सास चम्पा बुबू है। वह उसकी तरह छुआ–छूत का विचार नहीं रखती और समय आने पर बिल्कुल ही छोड़ देती है। नरेन्द्र की दुल्हन के आने पर आमा के हाथ–पैर जबाव दे देते हैं। तब वह अपना छूत–छात का रहा–सहा विचार भी छोड़ देती है 'मेरा छूत–छात का विचार हाथ–पैर की ताकत के साथ गया।'[44] वह जानती है कि दूसरों पर निर्भर रहकर अब ये कार्य नहीं कराये जा सकते हैं। अतः इसे छोड़कर वह उचित ही करती है। किन्तु आमा के चरित्र के कई पहलू ऐसे हैं जो उसे पारंपरिक सिद्ध करते हैं। वह भी अपनी सासों की तरह पुत्रवादी है। बेटे–बेटी में भेद करती है। अपने बेटों को तो वह खूब पढ़ाती–लिखाती है लेकिन बेटी पढ़ने के लिए कहती है तो वह राजी नहीं होती। उसके पति बेटी को पढ़ाने के लिए राजी हैं लेकिन वह उसका विवाह करवा देती है। इसी तरह आगे चलकर वह बेटी की बेटियों को भी शिक्षा–दीक्षा के पक्ष में नहीं है लेकिन सुनैना अड़ जाती है कि वह अपनी बेटियों को पढ़ायेगी। आमा चाहती है कि बेटियाँ पारंपरिक शिक्षा ग्रहण करें और अपने ससुराल जाकर अपना कर्म–धर्म करें। "सुनैना से भी कहा आमा ने, कि लड़कियों को सिलाई–कटाई की कक्षा में भेज दो।"[45] आमा का यह दृष्टिकोण सर्वथा पारंपरिक ही कहा जायेगा। वह सोचती है कि बेटियाँ अधिक पढ़–लिखकर क्या करेंगी ? शीघ्र ही उनका विवाह कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाना चाहिए। खैर, अपनी बेटी की जिद्द के आगे वह झुक जाती है और उन्हें पढ़ने–लिखने के लिए बाहर शहर में भेजती है।

---

[43] पटरंगपुर पुराण, पृ. 122
[44] पटरंगपुर पुराण, पृ.44
[45] पटरंगपुर पुराण, पृ. 120

आमा उन पुरातनपंथी विचारों में यकीन रखती है जो उसके पूर्वज करते आये हैं। वह बेटों के द्वारा बाहर बुलाने पर पूर्वजों का घर छोड़कर नहीं जाना पसंद करती। इसका एक कारण उस घर से उसका अपना मोह भी है। उसने अपना पूरा जीवन उस घर में बिताया है अतः उसे यूं छोड़कर जाना नहीं चाहती। सुनैना की बेटियाँ भी चाहती है कि वह बुढ़ापे में उनके यहाँ चलकर रहे लेकिन वह नहीं जाती। पुराने समय की सोच के अनुसार बेटी के यहाँ माँ–बाप का जाना अच्छा नहीं समझा जाता। यहाँ तक कि बेटियों का दिया धन भी स्वीकार्य नहीं है। इन्हीं मान्यताओं का पालन आमा भी करती है। मृत्यु के समय भी सावित्री–गायत्री के रुपये– पैसे को लेने के लिए मना कर जाती है कि इससे उसे मुक्ति नहीं मिलेगी। "आमा सब पहले से परबंध कर गई हैं। तू आमा की वंशधर जो क्या हुई चेली ? तेरा हाथ, तेरा पैसा, तेरा सोना, तेरा पकाया अन्न आमा के काज में नहीं लग सकने वाला ठहरा। नहीं तो उनकी मुक्ति नहीं होगी।"[46] यह आमा के चरित्र की विचित्र विशेषता है जो आमा अपने बेटों, पोतों द्वारा इच्छा विरुद्ध विवाह कर लेने और यहाँ तक कि नरेन्द्र द्वारा पंजाबी बहू लाने पर खुशी–खुशी स्वीकार कर लेती है वही आमा मृत्युपर्यंत झूठे ढकोसलों को मानती है। आमा को मालूम है कि उसकी मृत्यु पर भी उसके बेटे उसके पास नहीं आयेंगे फिर भी उसकी पुत्रवादी मान्यताएँ नहीं बदलती हैं। आमा की इच्छा के अनुरूप उसकी पोतियाँ उसका सारा काम–काज नरेन्द्र से सम्पादित करवाती हैं।

उपन्यास की दूसरी महत्त्वपूर्ण पात्र बिन्दु है। यह बिन्दु विक्टोरिया कॉटेज की बहू तथा गोपाल डिप्टी की पत्नी है। विवाहोपरान्त ससुराल में आते ही घर में और पूरे शहर में उसकी धाक जम जाती है। एक तो वह भारी–भरकम दहेज लेकर आई है तिसपर शहर के पहले डिप्टी/कलक्टर की पत्नी है। वह जो भी कार्य करती है शहर में वही नया चलन बन जाता है। ससुराल में आते ही वह घर को आधुनिक शैली से तुरंत सजा देती है। उसके पति ने अंग्रेजों की पत्नियों के साथ बोलने–बतियाने और खाने के लिए उसे अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दिखलाई है। अतः वह पढ़ी–लिखी आधुनिक

[46] पटरंगपुर पुराण, पृ. 151

स्त्री है। बिन्दु का हर कार्य दिखावे की एक नई मिसाल है। ऊपर से वह अत्यंत मृदुभाषी, दूसरों का ख्याल रखने वाली और संवेदनशील नज़र आती है लेकिन यह उसके व्यक्तित्व का ऊपरी दिखावा–भर है। हकीकत में वह ईर्ष्यालु, अवसरवादी, चालाक औरत है। बिष्णुकुटी की आमा जब तीयल–दहेज का सामान देखने से मना कर देती है तो वह अन्दर से जल–भुन जाती है लेकिन ऊपर से इसका एहसास नहीं होने देती।

बिन्दु पटरंगपुर शहर में नये तौर–तरीके की शुरुआत करती है। वह समृद्ध और सम्मानित परिवार की बहू है अतः शहर की सभी स्त्रियाँ उसका अनुसरण करती हैं। वह दान–दहेज में अधिक लेन–देन को बढ़ावा देती है, नये–नये खर्चीले फैशन की शुरुआत करती है तथा घर के पूर्वजों की पुरानी सम्पत्ति को बेचकर उसकी जगह सस्ते सामान लाती है। उसकी देखा–देखी शहर की सारी सीधी–सादी औरतें उसका अनुकरण करती है। ऐसा करते समय बिन्दु यह नहीं देखती कि आगे चलकर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। शहर की सारी सम्पत्ति बिक कर दूसरे प्रदेशों में चली जाती है और शहर अपनी ही चीजों से वीरान हो जाता है।

बिन्दु हद् दर्जे की असंवेदनशील महिला है। अपना हित साधने के चक्कर में वह दूसरों की भावनाओं का कोई ख़्याल नहीं करती। अपनी बेटी इन्दु के लिए उपयुक्त वर की तलाश में बिष्णुकुटी की आमा के बेटे देवीदत्त पर उसकी नज़र रहती है। वह आमा की इजाजत लिए बगैर उसके बेटे को ही सीधे राजी कर लेती है। आमा को अपने बेटे के विवाह के अवसर पर ही उसको ख़बर मिल पाती है। इसी तरह आमा के एक और बेटे हरीश के साथ अपनी भतीजी का विवाह आमा की अनुपस्थिति में ही करवा देती है। उस वक्त वह आमा की भावनाओं का बिल्कुल ख्याल नहीं रखती कि उसे कैसा लगेगा। वह स्वयं तीन बच्चों की माँ है लेकिन माँ–बेटे को दूर रखने के लिए सारी कवायदें करती है। आमा के दोनों बेटे–हमेशा के लिए अपनी गृहस्थी में व्यस्त होकर अपनी बूढ़ी–विधवा मां को विस्मृत कर देते हैं। भले ही इस कृत्य के लिए उसके बेटे अधिक जिम्मेदार हैं लेकिन एक स्त्री होने के नाते बिन्दु अपनी बेटी और भतीजी को उनके उत्तरदायित्व का एहसास तो दिला ही सकती थी।

अपनी सास के प्रति बिन्दु का व्यवहार और भी अधिक अनुत्तरदायित्वपूर्ण था। जब–तक उसके ससुर जीवित रहे उन्हें दिखलाने के लिए वह अपनी सास की आज्ञा का पालन तत्परतापूर्वक करती थी किन्तु जैसे ही ससुर की मृत्यु हुई, वह सास को छोड़कर मैदानी शहर में जा बसी और केवल छुट्टियों में घर आती थी। सास के अन्त समय में खाने–पीने तक की चीजों के लिए सास को तरसाया। अपनी देवरानी से भी उसकी बनी नहीं और सम्पत्ति का बंटवारा कर अपना ले–देकर बाहर चली गई।

बिन्दु के चरित्र में अजीब विरोधाभास की झलक मिलती है। उसके अधिकांश क्रियाकलाप आधुनिक जीवन–शैली के काफी नजदीक है लेकिन कहीं–कहीं पर वह अत्यधिक कर्मकांडी नजर आती है जिससे उसके चरित्र में दोहरेपन का एहसास होने लगता है। वह अपने बेटों को बोर्डिंग में डालती है जिसे शहर के लोग मलेच्छों का बोर्डिंग बोलते हैं। वहाँ पर वह छुआछूत के विरोध में खड़ी दिखती है और अपनी सास के रोने–कलपने के बावजूद स्कूल में भर्ती करवाती है। परन्तु यही बिन्दु स्वयं सभी आचार–विचार का पालन बड़ी कठोरतापूर्वक करती है। अपने बेटों के सभी संस्कारों का कर्मकांड सहित विधिवत आयोजन करवाती है। स्वयं छुआछूत का खूब पालन करती है "बुढ़ापे में भी कर्मकांडी ठहरी ऐसी कि बिना गंगाजल का छींटा दिये साबूदाना भी नहीं खाने वाली हुई। एक टैम पक्का चोखा खाने वाली हुई वह।"[47] इसी वजह से उसकी अपनी बहुओं से भी नहीं बनती क्योंकि उसके पाखंडों से उन्हें खासी असुविधा हो जाती है।

बहुओं से नाराजगी की वजह से बिन्दु अपनी सारी सम्पत्ति लेकर अपने बेटी–दामाद इन्दु, देवीदत्त के यहाँ रहने चली जाती है। यहाँ बिन्दु अपने आधुनिक सोच का एक और उदाहरण पेश करती है। रीति–रिवाज के विरुद्ध बेटी के यहाँ जाना यही दर्शाता है। अन्तिम समय तक बिन्दु वहीं रहती है और मरते समय अपनी सारी सम्पत्ति अपनी बेटी को सौंप देती है। उसका क्रिया –कर्म भी उसका दामाद देवीदत्त ही उसकी इच्छानुसार सम्पन्न करता है। बिन्दू का चरित्र इस उपन्यास में एक साहसी

---

[47] पटरंगपुर पुराण, पृ.90

आधुनिक स्त्री के रूप में विकसित हो सकता था परन्तु मृणाल पाण्डे ने इसके चरित्र के नकारात्मक पहलुओं को दिखाने में ही विशेष रूचि ली है। इसके बावजूद कई स्थलों पर यह चरित्र हमें प्रभावित करता है।

अध्याय तृतीय

'अपनी गवाही' : पत्रकारिता जगत और स्त्री

अध्याय तृतीय

'अपनी गवाही': पत्रकारिता जगत और स्त्री

'अपनी गवाही'[1] उपन्यास पत्रकारिता जगत में कार्यरत एक स्त्री की कहानी है। मृणाल पाण्डे का यह उपन्यास सन् 2003 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास मूल रूप से अंग्रेजी में 'माई ओन विटनेस' के नाम से प्रकाशित हुआ था जिसका हिन्दी अनुवाद अरविन्द मोहन ने किया है। हिन्दी पत्रकारिता की दुर्दशा एवं बाद में इसके उभार को यह उपन्यास बखूबी चित्रित करता है। आजादी के तुरन्त बाद तक हिन्दी पत्रकारिता की हालत बहुत बदतर थी और अंग्रेजी पत्रकारिता के मुकाबले हिन्दी का पाठक वर्ग भी बहुत सीमित था, हिन्दी क्षेत्र में अशिक्षा इसकी सबसे बड़ी वजह थी। आपातकाल के दौरान हिन्दी पत्रकारिता ने तेजी से सूचनाओं के क्षेत्र में अपना कदम बढ़ाया और इसका पारंपरिक स्वरूप धीरे-धीरे बाजारोन्मुख होता चला गया। सूचनाओं के प्रति हिन्दी पाठक वर्ग भी काफी जागरुक हुआ और हिन्दी पत्रकारिता अंग्रेजी पत्रकारिता को चुनौती देने लगी।

इसी दौरान पुरुष वर्चस्व वाले इस पेशे में स्त्रियों ने भी अपनी दस्तक दी। उपन्यास की नायिका कृष्णा उन बहुत थोड़ी स्त्रियों में से एक हैं जो किसी दैनिक समाचार पत्र का सम्पादक बन पायी है। उपन्यास की कथावाचिका स्वयं कृष्णा ही है जो स्वयं हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप को नजदीक से देखती है और बिना-लपेट के इसे उसी रूप में प्रस्तुत करती हैं।

कथानक–

यह उपन्यास नायिका-प्रधान है। कथानक की शुरुआत अपने कार्य क्षेत्र में अत्यंत सफल एक स्त्री कृष्णा के आत्मंथन से शुरू होती है। कृष्णा पूर्व संपादक पत्रकार है और अपने इस पेशे से स्वेच्छा से उसने अवकाश ले लिया है। पत्रकारिता

---

[1]मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण2010

जैसे उठापटक वाले पेशे में लगातार कई साल काम करने के पश्चात् अब वह सोचती है कि इतने दिनों तक आखिर वह कैसे जुड़ी रही। पत्रकारिता में बिताये अपने लम्बे समय के अनुभव से उसे पूरा विश्वास हो चला है कि ऊपर से देखने पर यह पेशा स्वतंत्र अभिव्यक्ति से जुडा हुआ लगता है जहाँ हर सूचना सच्चाई का दावा करती है लेकिन हकीकत कुछ और है। सूचनाएं भी विचारधारात्मक स्तर पर बदल जाती हैं। कृष्णा पर जब दबाव बढ़ने लगता है तो वह इससे मुक्त हो जाती है। उसकी बेटियाँ उसके आत्ममंथन को उसका अपराध–बोध बतलाती हैं तब वह अपने अतीत को एक बार और सहेजने की कोशिश करती है।

कृष्णा एक महत्वाकांक्षी लड़की है जो अपने दम पर कुछ करना चाहती है। उसका पति एक आई. ए. एस. ऑफिसर है। दोनों मिलकर एक सीधी–सादी जिन्दगी बिताने की बजाय अपेक्षाकृत चुनौतीपूर्ण अपारंपरिक रास्ता चुनते हैं जिसमें दोनों अपना अलग–अलग लक्ष्य चुनते हैं। शुरुआत में कृष्णा एक प्रतिष्ठित कॉलेज में अंग्रेजी की अध्यापिका है लेकिन जल्दी ही उसे अपने काम में अरुचि होने लगती है। वह सोचती है कि अच्छे घर–वर का इन्तजार कर रही अमीरजादी लड़कियों को पढ़ा कर वह अपनी ऊर्जा को गवाँ रही है क्योंकि ये लड़कियाँ अपने लिए इससे बेहतर कोई अन्य मुकाम नहीं पाना चाहती हैं।

कृष्णा कुछ अलग करना चाहती है और जल्दी ही उसे अपना भविष्य पत्रकारिता में दिखने लगता है। अपने एक मित्र के कहने पर अध्यापिका की नौकरी छोड़ वह पत्रकारिता में कदम रखती है। पत्रकारिता में उसके सामने दो क्षेत्र मौजूद हैं जिसमें वह काम कर सकती है। एक अंग्रेजी पत्रकारिता और दूसरा हिन्दी पत्रकारिता। हिन्दी मीडिया के प्रति अपने विशिष्ट जातीय लगाव की वजह से वह हिन्दी मीडिया में काम करने का निश्चय करती है। अपने घर में ही उसे यह कदम उठाने पर भारी विरोध का सामना करना पड़ता है क्योंकि उसका अफसरी खानदान अंग्रेजी मीडिया को अत्यधिक महत्व देता है। कृष्णा के मुन्नू चाचा जो अंग्रेजी मीडिया में पत्रकार रह चुके हैं उसे कड़ी फटकार लगाते हैं और चेतावनी देते हुए कहते हैं कि यह उसके लिए आत्मघाती

फैसला है। कृष्णा की माँ भी ऊपरी मन से उसे आज्ञा देती है। कृष्णा इन विरोधों से घबराती नहीं और अपने फैसले पर अडिग रहती है।

कृष्णा को हिन्दी समाचार एजेंसी 'हिन्द भारती' में अपना पहला काम मिलता है। वह वहाँ पर वरिष्ठ संवाददाता के रूप में नियुक्त होती हैं लेकिन वहाँ उसे महत्वपूर्ण काम नहीं सौंपा जाता। 'हिन्द भारती' के सम्पादक सोचते हैं कि वह एक बड़े अधिकारी की पत्नी है और यहाँ शौकिया तौर पर काम करने आई है।

'हिन्द भारती' में शहर के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग जैसा काम उसे दिया जाता है जिसे वह जल्दी ही सीख जाती है और इस काम को आसानी से करने लगती है। इस काम को करने के बाद जो समय मिलता है उसमें वह पढ़ने–लिखने का काम करती है अथवा अपने सहयोगियों की मदद करती हैं। काम को करते हुए अपनी इस छोटी– सी भूमिका से असंतुष्ट रहती हैं और सोचा करती हैं कि कब वह सम्पादक बनेगी और महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपने स्वतंत्र विचार रखेगी। इसके लिए उसे ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ता और हिन्दी मीडिया में आए बदलावों की बदौलत वह भी अपने अन्य सहयोगियों के साथ सम्पादक के पद पर बैठाई जाती हैं। सत्तर के दशक में हिन्दी मीडिया का रूप बदला और पुराने संपादको को हटाकर नए लोगों को संपादक बनाया गया। कृष्णा अपनी इस महत्वपूर्ण उपलब्धि को पाकर अत्यंत खुश होती हैं।

अपने ही देश में अंग्रेजी मीडिया की बढ़ी हुई हैसियत और हिन्दी मीडिया के प्रति उपेक्षा का भाव कृष्णा को बहुत परेशान करता है। हिन्दी समाचार एजेंसी के कार्यालय और कर्मचारी उपेक्षा के कारण कम सुविधाएं और वेतन पाने के लिए मजबूर हैं जबकि मीडिया के कर्मचारी दिल्ली के महँगे इलाकों में स्थित कार्यालयों में काम करते हैं और ऊँचा वेतन पाते हैं। समाचार एजेंसी में काम करते हुए कृष्णा बहुत नजदीकी से भारतीय राजनीति को देखती है। 80 के दशक में दो–दो भारतीय प्रधानमंत्रियों की हत्या और उसके बाद राजनीति में आ रहे परिवर्तन भारतीय समाज को गहरे उद्वेलित करते हैं और हिन्दी मीडिया में जबर्दस्त उछाल आता है। राजनीति के बदलते तेवर को देखकर कृष्णा को लगता है कि अब वाकई में सत्ता परिवर्तन का

काम हो जाएगा और मौजूदा सत्ता जो भारत में राजवंश का रूप ले चुका है, अब उसकी पार्टी खात्में की कगार पर है। इस बीच भारत के अनेक राज्यों में क्षेत्रीय पार्टियों का उदय होता है और केन्द्रीय पार्टी का विघटन शुरू हो जाता है। क्षेत्रीय पार्टियों के उदय के साथ ही भाषाई मीडिया का कारोबार भी उछाल लेता है और नये–नये लोग मीडिया में अपनी साथ स्थापित करने लगते हैं।

धीरे–धीरे कृष्णा जैसे लोग प्रिंट मीडिया में पुराने संपादक के पद पर काम करते हुए भी उपेक्षित होने लगते हैं। कृष्णा अपने मालिकों की इच्छा के अनुसार काम करने के लिए मजबूर हो जाती है। वह जल्दी महसूस करने लगती है कि इस क्षेत्र में उसका स्त्री होना भी आड़े आ रहा है और सभी उसकी कार्य–क्षमता और प्रतिभा को शक की निगाह से देखते हैं।

कृष्णा की जिंदगी जल्दी ही करवट लेती है। पाकिस्तानी उच्चायुक्त के घर एक प्रेस की पार्टी में वह शामिल होती हैं। वहाँ उसे एक महत्वपूर्ण समाचार एजेंसी का मालिक और टी.वी. प्रस्तोता मिलता है जो बातचीत में ही उसे अपनी कम्पनी में काम करने की पेशकश करता है। कृष्णा कुछ समय तक सोचती–विचारती है और प्रिंट मीडिया छोड़ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में अपने कैरियर की शुरुआत करती है। प्रिंट मीडिया की अपेक्षा आकर्षक वेतनमान और समाचार वाचिका की नई भूमिका उसे अपनी तरफ खींचती है। इसके साथ ही वह हिन्दी की मुख्य संपादक के तौर पर वहाँ नियुक्त होती हैं। शुरुआत में अपने काम को लेकर वह बहुत उत्साहित रहती हैं और अपनी शर्तों पर काम करती हैं।

जल्दी ही यहाँ पर भी उसे हिन्दी डेस्क के प्रति मालिकों का उपेक्षा भाव नजर आने लगता है। अंग्रेजी डेस्क वाले हमेशा हिन्दी डेस्क वालों से अपना काम निकलवाते रहते हैं और हिन्दी वालों को कोई खास काम नहीं दिया जाता है। अंग्रेजी में जो खबरे आती हैं हिन्दी डेस्क वाले उसी का अनुवाद कर काम चलाते हैं। कृष्णा को यह सब बुरा लगता है और वह हिन्दी वालों के प्रति उपेक्षा के खिलाफ कम्पनी का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करती है लेकिन ऊपर से कोई जबाब नही आता है। जब वह व्यक्तिगत रूप से इस मसले को उठाती है तो उसे जबाब मिलता है कि यहाँ जो

जैसा है वैसा ही रहेगा और किसी तरह का बदलाव नहीं होगा। कम्पनी के इस अड़ियल रवैये से कृष्णा बहुत क्षुब्ध होती है। कृष्णा की शिकायतों को कम्पनी द्वारा बहुत गलत रूप में लिया जाता है और उसके प्रति भी उपेक्षा का भाव बढ़ जाता है कृष्णा के महत्वपूर्ण कार्यक्रम और इण्टरव्यू को कॉंट–छॉंट कर टी.वी. पर प्रस्तुत किया जाता है। इन हरकतों से कृष्णा तनाव में आ जाती है और परेशान रहने लगती है।

इसी बीच कृष्णा की माँ पार्वती बीमार पड़ जाती है। कृष्णा माँ की देख–भाल के लिए छुट्टी का आवेदन–पत्र भेजती है। कृष्णा का पत्र भेज कर छुट्टी मांगना कम्पनी की बॉस जया को बहुत नागवार गुजरता है और वह धमकी भरे अंदाज में उससे छुट्टी के विषय में पूछताछ करती है। कृष्णा का अनिश्चित तिथि तक छुट्टी मांगने से उसका पारा और चढ़ जाता है। जया और संजय रानाडे उसे मनाने की कोशिश करते हैं इस पर कृष्णा राजी नहीं होती है। इस समय तक कृष्णा निर्णय लेने के काबिल हो चुकी थी क्योंकि आर्थिक दुश्चिंताएं अब उसके पास नहीं थीं। वह दबाव में काम करने की अपेक्षा काम से मुक्त हो जाना ठीक समझती है। उसने इस पेशे में लम्बा वक्त गुजारा है अतः उसे किसी बात का कोई मलाल नही है। कम्पनी के मालिक उसे इस्तीफे का विचार छोड़ काम करने के लिए आग्रह करते हैं लेकिन वह उनकी शर्तों पर काम करने के लिए राजी नहीं होती और इस्तीफा दे देती है।

पत्रकारिता का पेशा और स्त्री–

पत्रकारिता जगत आमतौर पर पुरुष वर्चस्व वाला पेशा माना जाता है जिसमें स्त्रियों की उपस्थिति बहुत कम है। हांलाकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में वर्तमान में स्त्रियों की संख्या में इजाफा हुआ है लेकिन उसमें भी मर्दों की अपेक्षा उनकी संख्या अभी कम ही है। अगर टी.वी. पर उनकी दृश्यमानता को हटाकर देखें तो वह और भी कम हो जाएगी। डॉ. सुधीश पचौरी ने अपनी पुस्तक 'साइबर स्पेस और मीडिया'[2] में एक सर्वेक्षण का हवाला देते हुए दूरदर्शन में कार्यरत पुरुष और महिला कर्मियों की संख्या में

[2] सुधीश पचौरी,साइबर स्पेस और मीडिया,प्रवीण प्रकाशन,संस्करण.2000

तुलनात्मक रूप से भारी अंतर को दर्शाया है– "कुछ पहले एबर्ट फाउंडेशन द्वारा आयोजित एक वर्कशाप में दूरदर्शन में महिलाओं की स्थिति को लेकर एक दिलचस्प सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया था इसके अनुसार दूरदर्शन के निदेशालय समेत सात निर्माण केन्द्रों में दूरदर्शन के कुल कर्मियों में 3783 पुरुषों के मुकाबले सिर्फ 678 महिला करती थीं। प्रतिशत के हिसाब से 1994 में दूरदर्शन में 15 प्रतिशत निर्माण (प्रोडक्शन) में, 10 प्रतिशत तकनीकी कार्य (यथा इंजीनियर आदि) में, 10 प्रतिशत संपादन कार्य में, 19 प्रतिशत प्रशासनिक कार्य में, 7 प्रतिशत समाज सेवा कार्य में, 27 प्रतिशत आयसेवा में कार्यरत थी। 1984 के आसपास तक उच्च पदों यथा असिस्टेंट स्टेशन डायरेक्टर के पद पर सिर्फ एक महिला थी। इसी तरह रेडियों में 27177 पुरुषों के मुकाबले 3190 महिलाकर्मी थी इनमें 56 प्रतिशत तो एनाउंसर थी।"[3]

इस आकड़े से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। निश्चित् रूप से यह आँकड़ा अब बढ़ा होगा जिस पर कोई नया आँकड़ा उपलब्ध नहीं है लेकिन जिस समय यह उपन्यास लिखा गया था वह इस आँकड़े की पुष्टि करता है। उपन्यास की नायिका सत्तर के दशक में ही प्रिंट मीडिया में प्रवेश करती है। जहाँ उसके साथ अधिकांश पुरुष सहकर्मी ही काम करते हैं। जो थोड़ी–बहुत स्त्रियाँ हैं भी उन्हें लगातार यह अहसास दिलाया जाता है कि "मर्द अभी भी इस पेशे में सब कुछ है और कोई औरत उनकी सत्ता को चुनौती नहीं दे सकती है।"[4] वस्तुतः प्रिंट मीडिया में कोई स्त्री पत्रकार भले ही बना दी जाती है लेकिन पूर्ण रूप से संपादन का काम बहुत कम ही स्त्रियों को दिया जाता है जो लगभग ना के बराबर होता है।

कृष्णा अपने लिए पेशे के रूप में जब हिन्दी पत्रकारिता को चुनती है तो मीडिया में काम कर चुके उसके मुन्नु चाचा उसे बुरी तरह डपटते हैं और कहते हैं "नथिंग बट ए फयूटाइल गेश्चर आफ डिफायंस अंगेस्ट वीक मोर्टल कंडीसन आफ वूमेनकइंड इन ए थर्ड वर्ल्ड कंट्री (और कुछ नहीं तीसरी दुनिया की औरतों की संघातिक स्थितियों के

---

[3] वही, पृष्ठ संख्या ,82, पी. सी. जोशी कमेटी रिपोर्ट

[4] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं. 40

खिलाफ विरोध की भंगिमा भर है।) उसे नौकरी की जरूरत नहीं है वह तो औरतों द्वारा समय–समय पर अपनी तरफ ध्यान खींचने की आदत का यह प्रदर्शन कर रही है।"[5] यह सुनते ही कृष्णा रूआंसी हो उठती है और वहाँ से चली आती है। मुन्नू चाचा हिन्दी पत्रकारिता में जाने के उसके फैसले को उसका बचकानापन मानते हैं और इसे उसके लिए आत्मघाती मानते हैं।

'हिन्द भारती' समाचार एजेंसी में काम करते हुए कृष्णा वहाँ भी इस बात का अनुभव करती है कि उसे स्त्री होने के कारण गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा। 'हिन्द भारती' का संपादक नीरज उसकी इज्जत केवल इस लिए करता है कि वह ऊँचे रसूख वाले परिवारों से सम्बन्ध रखती है और एक महत्वपूर्ण व्यक्ति की सिफारिशी चिट्ठी लेकर वहाँ पहुँची है। अगर वह सिफारिशी चिट्ठी लेकर ना जाती तो उसकी प्रतिभा को परख कर उसे हर्गिज काम पर न रखा जाता। पहली ही मुलाकात में नीरज जी उसे यह जता देते हैं कि हिन्दी पत्रकार के रूप में काम करने का फैसला उसने सोच–समझ कर नहीं लिया है और शायद वह शौकिया पत्रकार बनना चाहती है। जब कृष्णा कहती है कि वह "एक बार इस क्षेत्र में आ जाने के बाद वह यहाँ जमना और सफल होना चाहती है।"[6] तो नीरज जी काफी हैरान होते हैं और उससे कहते हैं "अगर आप हिन्दी पत्रकार के तौर पर स्थायी नौकरी पाना चाहती हैं तो निश्चित् रूप से आप अपने जैसे समाज की अपवाद ही हैं। क्या आप को मालूम है कि आप क्या कर रही हैं।"[7]

शुरूआत में कृष्णा को महत्वपूर्ण खबरों की रिपोर्टिंग का काम नहीं सौंपा जाता है और उसे केवल शहर की सांस्कृतिक गतिविधियों की रिपोर्टिंग और उससे जुड़े लोगों का साक्षात्कार लेने का काम मिलता है कृष्णा न चाहते हुए भी यह काम स्वीकार कर लेती है क्योंकि अभी इस क्षेत्र में उसे अपनी जमीन पुख्ता करनी है। अपने काम में

5 वही, पृ.सं. .24

[6] वही, पृ.सं. 31

[7] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं. 31

कृष्णा को अपना हलका लिया जाना बहुत पीड़ाजनक लगता है फिर भी वह काम को पूरी जिम्मेदारी और निष्ठा के साथ पूरा करती है। वह सोचती है कि यह उसके आगे के काम का महत्वपूर्ण हिस्सा है जो उसे आना चाहिए।

इस पेशे में कृष्णा को लैंगिक भेदभाव के कारण किसी तरह के शोषण का सामना नहीं करना पड़ा लेकिन एक स्त्री होने के नाते गाहे–बगाहे उसकी प्रतिभा एवं कार्यशैली पर जरूर शक किया जाता है। यहाँ पर स्त्री को कमतर माना जाता है। तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग (जो इस पेशे से जुड़े हुए हैं) के लोग भी इस मानसिकता से ग्रस्त दिखाई देते हैं कि ज्ञान के मामले में स्त्रियाँ कमतर होती हैं। जब कृष्णा को कार्यकारी संपादक बनाया जाता है तब भी उसे उस पद पर बिठाने वाले लोग ही एक औरत होने के कारण उसकी प्रतिभा को लगातार नकारने की कोशिश करते रहते है। कृष्णा को वह हमेशा एहसास दिलाते रहते हैं कि उसे यूँ ही इस पद पर बैठाया गया है। 'हिन्द भारती' में काम करते हुए ही वह इस पेशे से जुड़ी स्त्रियों की समस्याओं से दो–चार हो चुकी थी।

चूँकि कृष्णा एक बड़े घर से सम्बन्ध रखती थी ऊँचे पद पर आसीन थी इसलिए वह अपने बॉस की अश्लील फब्तियों और चुटकुलेबाजियों से बच निकलती थी और जो कुछ उसके विषय में कहा–सुना जाता था वह उसके पीठ पीछे होता था लेकिन साधारण घरों से आने वाली स्त्रियों का इन सब से बच निकलना मुश्किल ही नहीं लगभग नामुमकिन था। नीरज जी कृष्णा की तो बहुत इज्जत करते थे लेकिन उसकी सहकर्मी को छेड़ने से बाज नहीं आते थे। वह अक्सर उस लड़की को कोई भद्दा चुटकुला सुना उसे शर्मिन्दा करते रहते थे। "कई बार वे कृष्णा की एक सहकर्मी को कुरेदते हुए कोई बहुत ही घटिया चुटकुला सुना देते थे जिससे वह बेचारी चुकन्दर सी लाल पड़ जाती थी और फिर बाकी दिन सिर गाड़े बैठी रहती थी।"[8] चूँकि नीरज जी वहाँ के प्रधान संपादक थे। अतः इस अश्लील हरकत की शिकायत किसी से कर भी

[8] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं. 34

नहीं सकती थी और यदि कर भी देती तो सम्भवतः उसे नौकरी से ही निकाल दिया जाता।

अखबार के दफ्तरों में काम करने वाली स्त्रियों को न केवल बॉस बल्कि अपने सहयोगी सहकर्मियों को भी टीका–टिप्पणियों का सामना करना पड़ता है। अगर किसी महिला पत्रकार ने कुछ अच्छा लिखा तो उसके मित्र उसके मेहनत को देखने के बजाय उसका स्त्री होना देखेंगे और यह सोचेंगे कि उसने यह किसी से लिखवाया है। कृष्णा अपने सामने ही अपने साथ की महिला सहकर्मी के साथ उसके पुरुष सहयोगियों की बदतमीजी को देखती है तब उसे पहली बार इस पेशे में स्वयं के आने की निरर्थकता का एहसास होता है। एक दिन कृष्णा के सहयोगी कृष्णा को अपने साथ नजदीक के ढाबे में लंच पार्टी देते हैं वहाँ पर कृष्णा के अन्य सभी रिपोर्टर भी मौजूद रहते हैं। एक खूबसूरत महिला पत्रकार लवलीन किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति का इण्टरव्यू कर के आती है। तभी उसका पुरुष सहयोगी बड़े ही भद्दे इशारे से पूछता है कि उसने यह महत्वपूर्ण इण्टरव्यू कैसे हथिया लिया। वह पत्रकार उसका जबाब उसी रूप में देती है। तो वह बौखलाकर कहता है– "अरे, यह सब कुड़ी होने का कमाल है। तुम्हारा जलवा पाकियों पर चल जाता है। मेरे पास वो जलवा कहाँ है।"[9] यानी कि स्त्री की सफलता का सबसे कारण उसका स्त्री होना है। कम से कम लवलीन का सहयोगी तो यही मान कर चल रहा है कि लवलीन ने यह इण्टरव्यू इस लिए हथिया लिया क्योंकि वह एक खूबसूरत लड़की है। अगर लवलीन यह कहती भी है कि उसने प्रयास किया और पा लिया तो उसका यकीन नहीं किया जाता।

एक स्त्री भी कार्य कुशल और प्रतिभावान हो सकती है यह उसके सहयोगी भी नहीं मानना चाहते। लवलीन का किस्सा इसी बात की पुष्टि करता है। यह सब माजरा देख कृष्णा को अहसास होता है कि वह अपनी विशिष्टता के चलते ही बच पा रही है। इसी तरह अपेक्षाकृत सुविधाजनक इलेक्ट्रानिक मीडिया में भी लैंगिक भेदभाव मिलता है। कृष्णा जब संपादक बनकर इस मीडिया में आती है तो यहाँ के कार्यालय में महिला

[9] वही, पृ.सं. 40

पत्रकारों को मालिकों द्वारा परेशान करने की एक नई तकनीक का पता चलता है जब की इस कम्पनी की बॉस स्वंय एक महिला है। जिस लड़की से उनके मालिक खुश रहते हैं तो उन्हें ज्यादा परेशानी नहीं उठानी पड़ती लेकिन अगर लड़की उनकी गलत या सही मांग या आदेश का पालन नहीं करती तो उसे तरह–तरह से परेशान किया जाता है। उससे अलग–अलग शिफ्ट में काम लिया जाता है और कई–कई बार तो रात उसकी ड्यूटी लगा दी जाती है ताकी वह स्वयं परेशान होकर उनकी बात मान ले अथवा नौकरी छोड़ कर चली जाए।

इस उपन्यास में कृष्णा एक परिपक्व स्त्री का परिचय देती है। वह पुरुष साथियों की जुमलेबाजियों को नजरंदाज कर अपना काम करती रहती है कभी–कभी उसे भी इस तरह की स्थिति का सामना करना पड़ता है। पुरानी बिल्डिंग में कार्यकारी संपादक के पद पर उसकी नियुक्ति होती वहाँ पर अन्य संपादकों का भी ऑफिस होता है। उसके कमरे के सामने वाले कमरे में संपादक देवेश्वर बैठते हैं। अक्सर कृष्णा को लगता है कि सभी संपादक मित्र बातें करते उसे देख कर ठहाके लगाते हैं। वह यह भी जानती है कि ये बातें उसी के विषय में कही गयी होंगी। वह अक्सर वहाँ से हट जाया करती है क्योंकि वह उन्हें सुन नहीं पाती। देवेश्वर की संपादकीय टिप्पणियों को वह बहुत चाव से पढ़ती है। एक दिन वह उन्हें अपनी गाड़ी में लिफ्ट देने का आग्रह करती है लेकिन वह "नो मेमसाहिबा!" कहकर बड़ी रुखाई से मना कर आगे बढ़ जाते हैं। 'मेमसाहिबा' कृष्णा को इस बिल्डिंग के अपने साथियों से यह सम्बोधन सुनने की उम्मीद न थी। वह नहीं बता सकती कि बाकी लोग आपसी बात–चीत में उसके लिए इस सम्बोधन का प्रयोग करते हैं या कि उस दिन उन्होंने उसे झिड़कने के लिए यूँ ही इस शब्द का प्रयोग किया था। वह यह भी नहीं बता सकती कि सीधी गाली सुनने में उसे क्या ज्यादा खराब लगता।"[10]

---

[10]मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही ,पृ.सं. 5

[10]वही, पृ. सं. 76

दरअसल कृष्णा को बुरा इस लिए लगा क्योंकि उसने यह आग्रह मित्रवत् और बतौर सहयोगी किया था। कृष्णा का एक अन्य मित्र जे.पी. भी कृष्णा के ऊँचे रसूख को लेकर बातें बनाया करता था मगर जल्दी ही कृष्णा इन सबके पीछे का मतलब समझ गई कि "अक्सर भारतीय पुरूष ऐसी बातें तब भी करते हैं जब वे किसी महिला के प्रति आकर्षण से बचना चाहते हैं।"[11] कृष्णा की इस पेशे में सफलता उसके सभी आलोचकों का मुँह बंद कर देती है।वही जे.पी. जो कृष्णा के इस पेशे में सफल होने के सपने पर मजाक उड़ाया करता था वही बाद में उसका मित्र बन गया और प्रधानमंत्री का एक महत्वपूर्ण इण्टरव्यू कृष्णा को दिलवाता है।

कृष्णा कार्यकारी संपादक बनने के बाद धीरे–धीरे स्वतंत्रता पूर्वक काम करना शुरू करती है। वह तमाम तरह के राजनीतिक विषयों पर अपने विचार रखती है और गलत–सही का विश्लेषण करती है। राजनीति और मीडिया के आपसी गठजोड़ उसे बहुत परेशान करते हैं। भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री की हत्या भारतीय राजनीति में अचानक बवंडर पैदा कर देती है।

हत्या की खबर सुनते ही कृष्णा को अंग्रेजी अखबार के दफ्तर में बुलाया जाता है जहाँ उससे कहा जाता है कि चूँकि वह एक औरत है अतः वह उस विषय पर एक अंग्रेजी में एक संपादकीय लिखे। "औरत पर औरत लिखे"[12] यह सुनते ही कृष्णा सीधे मना कर देती है कि वह नहीं लिख सकेगी। लेकिन मित्रता का हवाला देकर उससे यह संपादकीय लिखवाया जाता है।

कृष्णा का दबावरहित लेखन और स्वतंत्र सोच उसके संपादकीय में स्पष्ट रूप से नजर आती थी। भारतीय राजनीति पर भी वह बिना किसी डर के अपनी बात रखती थी। जब 1992 में भारत में आम जनता विरोधी सरकारी फतवे आए तो उसने उसका जम कर विरोध किया। "कृष्णा ने जब न्यूजरूम में दफ्तर के साथियों के साथ बजट

---

[11] वही, पृ. सं, 76

[12] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं.54

भाषण सुना तो हैरानी से उसका मुँह खुला रह गया। जब मस्जिद गिराई गई वह रो पड़ी और उसने सार्वजनिक रूप से इसे राष्ट्रीय शर्म की बात कहा। इसके लिए उसका नाम सरकारी टी.वी.चैनल ने दो वर्ष तक अपनी ब्लैक लिस्ट में रखा।"[13]

राजनीति के प्रति कृष्णा किसी तरह का मोह–भाव नहीं रखती थी जैसे अन्य सहकर्मी रखते थे। धीरे–धीरे बजारोन्मुख हो रही पत्रकारिता सत्ता तंत्र के हाथ का खिलौना बनती जा रही थी जिसमें सरकार के प्रति एक अतिरिक्त आकर्षण का भाव था। अतः कृष्णा अब अपने ही कार्यालय में अलग–थलग पड़ती जा रही थी। "कृष्णा के सहकर्मी उसको लेकर परेशानी महसूस करते थे, उसके दुख को वे गलत मानते थे। इन घटनाओं के उसके विश्लेषण को पढ़कर बहुसंख्य समुदाय के उसके अनेक पाठक दुखी होते हैं, यह बात अनेक सहकर्मी संकेतों में बता चुके थे। उसके लिखे प्रत्येक संपादकीय पर उन्हे पाठकों की नाराजगी झेलनी पड़ती थी और जब वह नहीं लिखती थी तो वे खुश होते थे। जब सीनियर मैनेजर और राजनेता उसे कॉफी के लिए और बतियाने के लिए बुलाते थे तो उससे बड़े प्रेम से बाते करते थे लेकिन उनकी आँखे कहती थी–हमने आप को सभी चीजें उपलब्ध करायी है, अब हर चीज पर सवाल न उठाएं। आप तो सिर्फ हमारे इस अद्भुत लोकतंत्र पर भरोसा बनाए रखिए।"[14]

कृष्णा इन सभी बातों का मतलब समझती थी कि उससे किस तरह भक्तिभाव की अपेक्षा की जा रही है लेकिन ऐसा कर पाने में असमर्थ थी और करना भी नहीं चाहती थी। वह समझ गई कि पुरानी तरह की पत्रकारिता के दिन अब लद गए जिसमें लोग कुछ अलग करना चाहते थे और बेखौफ होकर सरकार की अनीतियों का खुलासा करना अपना धर्म समझते थे। अब वास्तविकता बदल चुकी थी। क्रांतिधर्मिता और स्वतंत्रता जैसे शब्द केवल दिखावे के लिए थे। यहाँ काम करना कृष्णा के लिए कठिन होता जा रहा था।

---

[13] वही, पृ.सं.94

[14] मृणाल पाण्डे,अपनी गवाही,पृ.सं.94

प्रिंट मीडिया में पुराने लोगों की अब केवल उपस्थिति भर थी, उनका वहाँ पर कोई काम नहीं बचा था। कृष्णा को जल्दी ही दूसरा अवसर मिल गया और वह प्रिंट मीडिया में अपने ढलते कैरियर को अलविदा कह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में चली आई, जहाँ न सिर्फ वह पूर्ण रूप से हिन्दी प्रकोष्ठ का संपादन करती थी बल्कि कम्पनी की समाचारवाचिका भी थी। अपनी इस नई भूमिका को वह जल्दी ही साध लेती है और काम करने लगती है। यहाँ काम करने का अपेक्षाकृत सुविधाजनक माहौल मिलता था और अपनी शर्तों पर काम करने की आजादी थी। समाचारवाचन के दौरान भड़कीले मेकअप करवाने से कृष्णा साफ मना कर देती है। उसकी इस इच्छा को कम्पनी के मालिकों को मानना पड़ता है।

यहाँ पर काम करते हुए शुरूआत में कृष्णा को नये काम के प्रति अत्यधिक उत्साह रहता था लेकिन जल्दी ही उसे यहाँ पर अपना आना निरर्थक लगने लगा। वजह थी हिन्दी और अंग्रेजी का द्वंद्व। यहाँ के तथाकथित 'हावर्ड पलट' मालिक भी अंग्रेजी को हिन्दी की अपेक्षा अधिक तवज्जो देते थे। प्रिंट मीडिया में हिन्दी पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी पत्रकारिता के जैसा सुविधाजनक कार्यालय या अन्य सुविधाएं नहीं थी लेकिन यहाँ पर सब कुछ होते हुए भी हिन्दी वालों के प्रति अंग्रेजी वालों का रवैया तिरस्कारपूर्ण था। अंग्रेजी डेस्क वालों को लगता था कि केवल वही बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं हिन्दी वाले नहीं। उनकी यह सोच कृष्णा को अंदर ही अंदर बहुत परेशान करती थी। चूँकि कृष्णा की अंग्रेजी बहुत अच्छी थी इसलिए उसे कोई कुछ कह नही पाता था। अब कृष्णा को एहसास होने लगा कि उसे बहुत बारीकी से जाल फेंक कर पालतू बनाया गया है।

टी.वी. पर चर्चा में भाग लेने के लिए बड़े–बड़े नेताओं को बुलाया जाता था और वे बड़े शौक से भाग लेने आया करते थे। तब कृष्णा यह देखकर बहुत हैरान होती थी कि एक भी नेता अंग्रेजी से नीचे उतर कर अपनी भाषा में बात करना पसन्द नहीं करता था भले ही क्यों न वह हिन्दी क्षेत्र का ही नेता हो अथवा उसे ठीक ढंग से अंग्रेजी बोलनी आती हो या नहीं। संसद में प्रस्तुत आम बजट पर परिचर्चा के लिए टी. वी. स्टूडियों में वित्त मंत्री आये हुए थे। परिचर्चा अंग्रेजी में होने वाली थी लेकिन कृष्णा

को हिन्दी का छौंक डालने के लिए बैठाया गया था। काफी समय तक कृष्णा को बोलने का मौका ही नहीं मिला और वह अपने बेकार मूँ बैठने को लेकर मन ही मन कोस रही थी कि "तभी उन तीनों को लगा कि मेज पर साथ बैठी कृष्णा को तो अभी तक कुछ भी बोलने को मौका ही नहीं दिया गया था। उन तीनों ने प्रोत्साहन देने वाले अंदाज में मीठी मुसकान के साथ कृष्णा को देखा"[15].... कृष्णा वित्त मंत्री से सवाल पूछती है क्या हम इस आंकड़ेबाजी और जुमले बाजी से बाहर आकर विशुद्ध हिन्दी में देशवासियों को कुछ शुद्ध सरल वाक्यों में यह बता सकते हैं कि आम आदमी को क्यों इस बजट का स्वागत करना चाहिए?"

"वित्तमंत्री ने अपने बड़े–बड़े शीशों वाले चश्में से, जो उल्लू की आँख का अहसास दे रहे थे, कृष्णा की तरफ भव्य उदासी से देखा, ''कृष्णाजी यह काम तो आप के लिए है'' उन्होंने कहा और कहते हुए मुस्कुरा दिये।"[16]

कृष्णा को यह सब स्थितियाँ परेशान करने वाली लगीं और वह लगातार तनाव में रहने लगी।इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी स्थितियां उसे उसके अनुकूल नहीं लगी। यहाँ भी उससे एक भक्ति भाव की अपेक्षा की जाने लगी। कृष्णा का हिन्दी वाला कार्यक्रम काफी लोकप्रिय होता जा रहा था और इसी के माध्यम से वह अपने को संतोष देने का असफल प्रयत्न कर रही थी।

हिन्दी डेस्क से जुड़ी शिकायतों पर कम्पनी के मालिकों के कान पर जूं नहीं रेंगती थी, कृष्णा अर्जियाँ देते देते थक गई थी। अंततः मालिकों के साथ उसकी पटी नहीं और वह इस्तीफा देकर घर चली गई।

कृष्णा के कार्यक्रम बढ़ते लोकप्रियता का हवाला देकर वे उसे रोकने की नाकाम कोशिश करते हैं लेकिन वह मना कर देती है। अब कृष्णा पूरे तंत्र से आजाद होकर अपनी माँ की देखभाल के लिए आती है। उसकी माँ को यह सुनकर अफसोस होता है

---

[15] मृणाल पाण्डे,अपनी गवाही,पृ.सं.170

[16] वही,पृ.सं.170

कि उसने नौकरी छोड़ दी है लेकिन वह माँ को तसल्ली देती है कि उसे नौकरी छोड़ने का कोई मलाल नहीं है और वह बहुत खुश है।

कामकाजी स्त्री का द्वन्द्व–

नौकरी करते हुए कृष्णा को दोहरी भूमिकाओं में उतरना पड़ता है। पति और दो बेटियों के छोटे परिवार में हरपल उसे सामंजस्य बिठाना पड़ता है। वह लगातार एक अपराध–बोध से घिरी रहती है कि वह अपने परिवार को पर्याप्त समय नहीं दे पा रही है। उसकी बेटियाँ माँ–पिता की अनुपस्थिति में घर में अकेले रहती हैं। यह बात कृष्णा को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाती है। बेटियाँ मां के हालात को समझने की कोशिश करती हैं लेकिन उसकी सामाजिक छवि के साथ तालमेल नहीं बिठा पाती। यह माँ बेटी के बीच दूरियों को बढ़ा देता है। उसकी किशोर उम्र की बेटियों के सामने जब भी कोई उसकी सामाजिक छवि के बारे में टीका टिप्पणी करता है तो वह उद्विग्न हो उठती हैं। वह माँ को केवल माँ के रूप में ही देखना पसन्द करती हैं। कृष्णा अपनी तरफ से पूरी कोशिश करती है कि अपनी बच्चियों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसे वह चाहती है।वह छुट्टियों में बच्चियों को साथ लेकर घूमने जाया करती है और उन के साथ समय बिताती है।

कृष्णा के आई.ए.एस. पति हर कदम पर उसका साथ देते हैं। वह बच्चियों की जिम्मेदारी उठाने में उसका हाथ बँटाते हैं और उस पर किसी तरह का दबाव नहीं डालते। वे एक सच्चे सहयोगी की तरह उसके हर सुख–दुख में हाथ बँटाते हैं और वक्त पड़ने पर अपनी तरफ से सलाह–मशविरा भी देते हैं। जब वह प्रिंट मीडिया छोड़ने की बात कहती है तो वह कहते हैं कि वह सोच–समझकर फैसला करे और आर्थिक जिम्मेदारी की परवाह न करे। वह कृष्णा पर अपनी कोई इच्छा नहीं थोपते और ना ही उसके कामकाज को लेकर टीका–टिप्पणी करते हैं। अपने पति के सहयोग से ही कृष्णा इस पेशे में सफलतापूर्वक काम कर पाती है और उच्च पद पर पहुँच पाती है।

धीरे–धीरे बड़ी होने पर उसकी बेटियाँ उसकी स्थिति समझने लगती हैं लेकिन माँ के लिए यह भी पीड़ादायक स्थिति है। कृष्णा को लगता है कि उसकी बेटियां उसकी वजह से ही अल्पभाषी हो गई हैं। वह उन्हें समय देने के लिए अकसर घूमने

का प्रोग्राम बनाती रहती है ताकि उन से बात करने का उसे मौका मिल सके पर कभी–कभी ऐसा हो जाता है जब कृष्णा अपनी छवि को लेकर बेटियों के सामने असहज हो जाया करती है। एक बार वह बेटियों के साथ पहाड़ों पर अपनी माँ के पास जाने के लिए ट्रेन में सफर करती है वहाँ टिकट निरीक्षक उसे पहचान कर उसकी बेटियों से कहता है "मैं आप को टी.वी. पर देखता हूँ।" टिकट चेकर ने मुस्कुराते हुए कहा, "क्या तुम लोग भाग्यशाली लड़कियाँ नहीं हो जो ऐसी माँ मिली है?" कृष्णा को लगा कि अब धरती फटे और वह उसमें समा जाये।"[17] उसकी बेटियाँ इन्हीं सब से बहुत चिढ़ती हैं पर कृष्णा कुछ कर नहीं पाती। वह सम्बन्धों को सहेजने की कोशिश में ही लगी रहती है।

कृष्णा अक्सर यह सोचती है कि "क्या ये बच्चियां उससे वादा कर सकती हैं कि वे अपनी मां की सार्वजनिक छवि को लेकर चाहे जितना चिढ़ें या परेशान हों वे आपस के व्यवहार में सामान्य बनी रहेंगी।"[18] लेकिन हमेशा उसे जवाब मिलता था कि "यह सम्भव नही था"[19] बेटियों को लगता था कि इस छवि ने उनसे उनकी मां को छीन लिया है और वे मां के उस प्यार और समय से वंचित हैं जिसपर उनका अधिकार है। कृष्णा को अक्सर दौरे पर जाना पड़ता था यह उसके काम की मजबूरी थी। दौरे पर जाने से पूर्व कृष्णा अपने घर में पति से पूछती है तो उसकी छोटी बेटी बडी रूखाई से जवाब देती है और कहती है कि–"तुम ये बातें बताने का कष्ट भी क्यों करती हो।"[20] कृष्णा कुछ कहती इससे पहले ही पति ने बात संभाल ली और उसे जाने की अनुमति दे दी। कृष्णा को अक्सर चुनावों के दौरान रिपोर्टिंग के लिए दूसरे शहरों और ग्रामीण इलाकों में जाना पड़ता था। कई–कई बार यह कई महीनों तक का होता था, कृष्णा इन दौरौं को टालती नहीं थी भले ही उसकी बेटियों की परीक्षाएं ही

---

[17] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं.83

[18] वही, पृ. सं. 82–83

[19] वही, पृ. सं. 83

[20] वही, पृ. सं. 84

क्यों न हों। कृष्णा चाहती है कि उसकी बेटियां उसके काम को समझें और उसका सहयोग करें। उससे घुले-मिलें और उसके साथ दोस्ताना व्यवहार रखें जिस प्रकार वह अपनी मां से विभिन्न मुद्दों पर बहस किया करती है वैसे ही वो भी किया करें परन्तु उसकी बेटियां उससे दूर-दूर रहती हैं। यदि उनमें आपस में बहस शुरू भी होती है तो जल्दी ही वे एक-दूसरे से मुँह फुला के बैठ जाती हैं अथवा एक-दूसरे पर आक्षेप गढ़ने लगती हैं।

कृष्णा के विवाह की पच्चीसवीं सालगिरह पर उसकी बेटियां विदेश से घर आती हैं। हवाई अड्डे पर प्रतीक्षालय में वह अपनी मां को इन्तजार करते हुए देखती हैं कि अचानक उनकी मां उनकी आखों से ओझल हो जाती है। दरअसल कृष्णा को अपना पुराना साथी वहाँ पर मिल जाता है और वह उससे मिलने चली जाती है। लड़कियों को यह उम्मीद नहीं थी कि उनकी मां उन्हें छोड़ किसी मित्र से मिलने चली जायेगी वह भी तब जब वह लम्बे अरसे बाद घर आ रहीं थीं। कृष्णा के इस कृत्य से बेटियां अत्यंत असहज हो गयीं और अपनी मां के प्रति "उन्हें अपना पुराना प्रेम और गुस्सा वापस आता लगा।"[21]

कृष्णा बेटियों की असहजता को समझ जाती है पर वह क्या कर सकती है। उसे तो भीतर-बाहर दोनों संभालना है। घर-बाहर का संन्तुलन साधते-साधते वह समझ ही नहीं पाती कि वह क्या करे। अपने काम को भी नहीं छोड़ सकती क्योंकि वह उसका जुनून है दूसरी तरफ पारिवारिक जिम्मेदारियां है। भारतीय समाज में अभी भी एक स्त्री का कर्तव्य पारिवारिक जिम्मेंदारियों को निभाना ही महत्वपूर्ण माना जाता है अगर वह कामकाजी है तब भी उसकी प्राथमिकता परिवार ही है। पारिवारिक सदस्य भी उससे यही अपेक्षा करते हैं। कृष्णा की बेटियां भी मां पर पहला हक अपना ही मानती हैं और जब यह देखती हैं कि मां की पहली प्राथमिकता वह नहीं बल्कि उसका काम है तो वह मां के प्रति रुष्ट हो उठती हैं। कृष्णा बेटियों की स्थिति समझती है। वह लगातार काम और घर की जिम्मेंदारी के अन्तर्द्वन्द्व से घिरी रहती है।

---

[21] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं.133

प्रमुख स्त्री चरित्र–

कृष्णाः

इस उपन्यास के चरित्रों में कृष्णा सबसे महत्वपूर्ण स्त्री चरित्र है। उसके चरित्र के माध्यम से एक सशक्त स्त्री की छवि को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में कृष्णा को बचपन से ही हम एक स्वतंत्र मिजाज की लड़की के रुप में देखते हैं। कृष्णा का परिवार शिक्षित उच्चवर्गीय परिवार है। उसका लालन–पालन भी उसी के अनुरूप हुआ था। उसकी मां स्वयं बहुत पढ़ी–लिखी जागरुक महिला है। वह अपने बच्चों की शिक्षा का बहुत ध्यान रखती है और उन्हें अलग–अलग विषय एवं भाषाएं जानने के लिए सदैव प्रेरित करती रहती है। कृष्णा का विद्रोही तेवर वहीं से दिखने लगता है जब वह अपनी शिक्षा के लिए कान्वेंट स्कूल में जाने का विरोध करती है। उसके अन्य भाई–बहन कान्वेन्ट स्कूल में पढ़ने जाते हैं। अतः मां चाहती हैंकि वह भी उसी स्कूल में पढ़े।अन्ततः कृष्णा की जिद्‌द पूरी होती है और उसे हिन्दी माध्यम के स्कूल में पढने के लिए भेजा जाता है। धीरे–धीरे यहीं से उसका स्वरुप अलग आकार लेने लगता है। वह अपने बारे में स्वयं फैसला लेने में खुद को सक्षम मानती है और भविष्य में यही करती है। वह दूसरों से अपने बारे में सलाह–मशविरा तो लेती है लेकिन आखिरी फैसला अपने हाथ में ही रखती है।

अपनी युवावस्था में अपने प्रेम–सम्बन्ध को लेकर को भी वह परिपक्वता का परिचय देती है। अनावश्यक भावुकता का उस पर कोई असर हमें देखने को नही मिलता। वह कॉलेज की पढ़ाई के दौरान एक लड़के के प्रति आकर्षित होती है। लड़के का नाम अनमोल है। वह उस लड़के के साथ स्कूटर पर बैठकर कॉलेज या पुस्तकालय आया–जाया करती है। कृष्णा की मां को यह सब बुरा लगता है और मुहल्लेवालों का हवाला देकर वह उसे समझाने की कोशिश करती है कि वह इस तरह सरेआम उसके साथ न रहा करे। कृष्णा अपनी मां से कहती है कि उसे कोई फिक्र नहीं है कि कोई उसे क्या कहेगा। यह सुनकर मां कहती है कि उसे उचित–अनुचित का ख्याल रखना चाहिए तब कृष्णा गुस्से में कहती है कि "क्या तुम यह जानती हो

कि हम लोग मेरे जीवन के बारे में बातें कर रहे हैं।"[22] मां यह सुनकर चुप हो जाती है और आगे कुछ नहीं कहती।

कृष्णा अपने और अनमोल के साथ अपने सम्बन्धों को लेकर बिल्कुल सहज रहती है। वह न तो अनमोल की अनुगामिनी बनने की कोशिश करती है न ही पथ–प्रदर्शक। अनमोल की पसंद उससे बिल्कुल अलग है। कृष्णा हिन्दी भाषा के साथ अपना जातीय जुड़ाव महसूस करती है लेकिन अनमोल उसे उसकी बेवकूफी समझता है। अनमोल के दादाजी पुराने समय में हिन्दी के बहुत बड़े कवि रह चुके हैं परन्तु अनमोल का परिवार उन्हें स्वयं से दूर–दूर रखता है। अब वह काफी बुढ्ढे हो चले थे और शहर के किसी कोने में अकेले रहा करते थे।

कृष्णा एक बार उनसे मिलने की इच्छा अनमोल के सामने जताती है तो वह उसे मना कर देता है। कृष्णा जिद्द करके उनका पता उससे ले लेती है और उनसे मिलने उनके घर पहुँच जाती है। वह यह देखकर बहुत हैरान होती है कि बीते ज़माने का इतना ब़ड़ा कवि इस तरह समाज और परिवार से दुत्कार पाकर एक बेहद गन्दे एवं असुविधाजनक इलाके में अकेले रहने पर मजबूर है। कृष्णा को उनसे मिलकर बहुत अच्छा लगता है और वह उनका आशीर्वाद लेकर लौट आती है।

कुछ ही समय बाद अनमोल के बड़े भाई की मृत्यु हो जाती है और वह टूटा–टूटा सा दिखने लगता है।वह कृष्णा से दूर–दूर रहने लगता है। कृष्णा सोचती है कि वह उसे सम्भाल सकती है लेकिन अनमोल ऐसा नहीं चाहता तब वह उसे अपने सम्बन्धों से आजाद कर देती है। अनमोल विदेशी स्कालरशिप पाकर पढ़ने के लिए चला जाता है और इस प्रेम–सम्बन्ध का पटाक्षेप हो जाता है।

विवाहोपरान्त कृष्णा एक नए संघर्ष में प्रवृत्त होती है। वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढ़ाती है। शुरुआत में वह एक कॉलेज में पढ़ाती है लेकिन यही उसका अन्तिम लक्ष्य नहीं बनता। वह कुछ और करने के सपने देखने लगती है। वह अध्यापिका का नौकरी छोड़ पत्रकारिता में आ जाती है।

[22] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृ.सं.73

एक बार इसमें आ जाने के बाद वह पीछे मुड़कर नहीं देखती और अपनी कार्यक्षमता एवं प्रतिभा के दम पर सबसे बड़े पद तक पहुँचती है। इस पेशे में इतने बड़े पद पर किसी महिला का पहुँच पाना विपरीत धारा में तैरने के समान था लेकिन कृष्णा इसकी राह में आने वाली कठिनाईयों को दरकिनार करते हुए अपने लिए यह सम्मान और गौरव हासिल करने में सफल होती है। काम के दौरान किसी भी गलत चीज के साथ वह समझौता नहीं करती और अपने निष्ठा को बरकरार रखती है।

इस पेशे से ज्यादा चुनौतियाँ उसे घर में मिलती हैं। मातृत्व की जिम्मेदारी उसके काम को काफी प्रभावित करती है और अपनी बेटियों की नाराज़गी उसे झेलनी पड़ती है। इतना होने पर भी कृष्णा हार नहीं मानती है और दोनों जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है। पारिवारिक जिम्मेदारी के लिए अपने काम को छोड़ने का विचार भी उसके मन में नहीं आता।'फलां की बेटी,फलां की बहू,फलां की पत्नी' जैसे सम्बोधनों से उसे सख़्त चिढ़ है। परिवार से इतर उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व आधुनिक स्त्री की सशक्त छवि को प्रस्तुत करता है जो समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाने के लिए कड़ा संघर्ष कर रही है।

पार्वती–

पार्वती 'अपनी गवाही' उपन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है तथा कृष्णा की माँ है। उसके पति अंग्रेज सरकार के स्वास्थ्य विभाग में बड़े डॉक्टर थे और उनका स्थानान्तरण एक पहाड़ी इलाके में हुआ था। पार्वती अक्सर अपने बचचों को अपने बचपन की कहानियां बताया करती है जिसमें वह इस बात का जिक्र जरुर करती है कि कैसे स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में उसके पीहर वाले स्वतन्त्रता सेनानियों की मदद किया करते थे। कृष्णा और अन्य बच्चों को उसकी ये कहानियां बहुत पसंद आती थी और अक्सर अपनी माँ से कहानियां सुनाने की जिद्द किया करते थे। पार्वती और उसके पति दोनों को हिन्दी भाषा से बहुत लगाव था और खासकर पार्वती को। वह अपने को अक्सर हिन्दी में कहानियां /कविताएं लिखने के लिए प्ररित करती है और घर में ही बच्चों से उसका पाठ करवाती है। बच्चों की शिक्षा–दीक्षा को लेकर वह

अतिरिक्त सजगता से काम लेती है और उनकी पढ़ाई–लिखाई पर सख़्त नज़र रखती है।

कृष्णा द्वारा हिन्दी मीडियम में पढ़े जाने को लेकर जिद्द करने पर उसका विरोध करती है। जब कृष्णा मानने को तैयार नहीं होती तो उसका दाखिला हिन्दी मीडियम में करवा देती है लेकिन अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई उसे घर पर करने के लिए मजबूर करती है। यही वज़ह होती है कि कृष्णा की अंग्रेजी भाषा पर अच्छी पकड़ बन जाती है और बाद में वह अंग्रेजी विषय से ही उच्च शिक्षा प्राप्त करती है। अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान पत्रकारिता जगत में जमने में भी उसकी मदद करता है।

पार्वती स्वयं भी उच्च शिक्षा प्राप्त गृहिणी है। वह अपनी बेटियों के साथ किसी राजनीतिक –आर्थिक मुद्दे पर खुलकर बहस करती है।एक माँ से अधिक अपने बच्चों के साथ उसका मित्रवत व्यवहार रहता है परन्तु वह इसकी आड़ में अपने बच्चों को उच्छृंखल नहीं होने देती और पर्याप्त अनुशासन रखती है।एक बार कृष्णा बातों–बातों में उसे'यार'कहकर सम्बोधित करती है तो वह तुरन्त नाराज़ हो जाती है और डांटते हुए कहती है–"मैं तुम्हारी यार नहीं हूँ।तुम्हारे मुँह से यह शब्द सुनना मुझे अच्छा नहीं लगता।"[23]

पार्वती जब भी कृष्णा को अत्यधिक काम करते हुए देखती है तो उसे छुट्टी लेकर अपने पास आ जाने का सुझाव देती है जिससे कि उसका तनाव थोड़ा कम हो। पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति वह हमेशा कृष्णा को सचेत करती रहती है तथा स्वयं भी उसके बच्चों की देखभाल करती है।वह काफी समझदार और दुनियादारी में निपुण स्त्री है। जब वह कृष्णा को अनमोल के साथ बेहिचक स्कूटर पर आते–जाते देखती है तो उसे समाज की नजरों के प्रति सचेत करती है। उसे पता है कि एक लड़की का विवाह–पूर्व किसी अजनबी लड़के के साथ घूमना–फिरना समाज में अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। कृष्णा उसके समझाने पर भी नही मानती तो वह चुप लगा जाती है क्योंकि उसे पता है कि अभी कृष्णा को कुछ समझ में नहीं आयेगा पर वह निश्चिंत है

[23] मृणाल पाण्डे ,अपनी गवाही, पृ.सं.64

कि जवानी का यह जोश कुछ ही दिनों का है और जल्दी ही उतर जायेगा। कई अन्य मौकों पर वह कृष्णा को उचित सलाह–मशविरा भी देती है तथा बेटी का हौसला भी बढ़ाती है।

पार्वती को अपने जीवन में बहुत जल्दी वैधव्य मिल गया। उसके पति की कैंसर की बीमारी के चलते जल्दी ही मृत्यु हो गई। कैंसर के मरीज को नजदीक से देखने की और सेवा–सुश्रुषा का भार उठाने की वज़ह से पार्वती अपने आप को किसी डॉक्टर से कम नहीं समझती। टी.वी. पर समाचार पढ़ते हुए न्यूजएंकरों (समाचारवाचक) को देखकर वह तुरन्त अनुमान लगाने लगती है कि कौन स्वस्थ है और कौन बीमार। कृष्णा के एक मित्र को कैंसर हो जाने पर वह कृष्णा को फोन कर कहती है कि वह अपने मित्र से कहे कि वह एलोपैथिक की बजाए घरेलू उपचार करे और उसे वह नुस्ख़ा भी बताती है। कृष्णा मना कर देती है कि वह यह नहीं कह पायेगी तो वह कहती है कि एक मित्र होने के नाते उसे यह अवश्य करना चाहिए।

पार्वती बच्चों के अपने–अपने काम में रम जाने के पश्चात् पहाड़ों में अकेली रह गई।कृष्णा को अपनी माँ का अकेले रहना बहुत खलता है लेकिन वह कुछ कर नहीं पाती क्योंकि उसकी माँ को पहाड़ों से बहुत लगाव है और इसी की वज़ह से वह बच्चों के पास नहीं आती।बुढ़ापे में भी पार्वती साफ–सफाई पसंद और नफ़ासत वाली स्त्री है। कृष्णा अपनी माँ के रहन–सहन को देखकर दंग रह जाती है कि कैसे उसकी माँ इस उम्र में भी घर को इतना साफ–सुथरा और सजा–संवार कर रखती है। अपने बेटे के अपनी तरफ से मुँह मोड़ लेने के बावजूद पार्वती अपनी बेटियों से कोई शिकायत नहीं करती और अपने अकेलेपन को ही अपना साथी बना लेती है। उपन्यास के अन्त में वह एक बड़े से अस्पताल में भर्ती और अपने अन्त का इन्तजार कर रही है।उसकी देखभाल के लिए बेटियां मौजूद हैं और बेटा बिजनेस के किसी महत्त्वपूर्ण काम से विदेश में है। उसने शहर के बड़े अस्पताल में माँ को दाख़िला दिलवा दिया है और अपने कर्तव्य से इतिश्री कर लिया है।वह यह नहीं जानता कि अब उसकी माँ अस्पताल के डॉक्टरों की जरुरत नहीं उसकी जरुरत है।

जया :

इस उपन्यास में जया का चरित्र बहुत कम उभर कर आता है लेकिन जितना भी है वह महत्वपूर्ण है। जया एक टी.वी. चैनल के कम्पनी की प्रमुख है तथा कम्पनी का संचालन करती है। यह वही संजय रानाडे है जो कृष्णा को इलेक्ट्रानिक मीडिया में लेकर आता है। कृष्णा के साथ अपनी मुलाकात में वह अपनी बहन का ज़िक्र इस दावे के साथ करता है कि उसकी बहन प्रतिभाओं को परखने में उस्ताद है। वह कृष्णा से एक किस्से का ज़िक्र करता है जिसमें कि जया पुरानी दिल्ली में एक रसोइयें का काम करने वाले एक साधारण ढाबे वाले से मिलती है। वह उसके बनाये हुए व्यंजन की बहुत तारीफ़ करती है और उसे अपने घर लाती है। कृष्णा इस कहानी से बहुत प्रभावित होती है और जया से मिलने का फैसला करती है। पहली मुलाक़ात में जया उसे एक ऊँचे पद पर आसीन बहुत ही गुरुर वाली खड़ूस बॉस लगती है। वह केवल दिखावटी शिष्टाचार निभाती है और कृष्णा से बेमन मिलती है। जब कृष्णा उस कम्पनी में काम करने लगती है तब जया उसे लगातार यह जताने की कोशिश करती है कि कृष्णा उसके अधीन काम करने वाली एक कर्मचारी भर है।

कृष्णा की स्वतन्त्र तरीके से काम करने प्रवृत्ति जया को बिल्कुल रास नहीं आती और हिन्दी डेस्क के प्रति कम्पनी की उदासीनता की तरफ़ कृष्णा का ध्यान आकर्षित कराना उसे बहुत नाग़वार गुजरता है। जया चाहती है कि कृष्णा उसके मन के मुताबिक काम करे और कम्पनी की किसी चीज पर उंगली न उठाये। जब कृष्णा ऐसा नहीं करती तो जया जान–बूझकर उस पर ध्यान नहीं देती। माँ की बीमारी पर कृष्णा जब छुट्टी मांगती है तो वह आपे से बाहर हो जाती है और कड़े लहज़े में चीख़कर उससे सवाल–जवाब करती है। कृष्णा के लिए यह सब बर्दाश्त के बाहर हो जाता है और वह जया के अप्रत्याशित कृत्य से दंग रह जाती है।

वस्तुतः जया एक दंभी और घमण्डी लड़की है। उसे लगता है कि वह कम्पनी की सर्वेसर्वा है। अतः सभी को उसकी बात सिर झुकाकर मान लेनी चाहिए अपने मातहतों के प्रति उसके मन में कोई नरम कोना नहीं है। उसे सोचती है कि अपनी

कड़क छवि प्रस्तुत कर ही बॉस की छवि को वह ठीक ढंग से प्रस्तुत कर पायेगी और अपने इसी रुप को वह उपन्यास में चरितार्थ करती दिखती है।

अध्याय चतुर्थ

स्त्री अस्मिता के प्रश्न

अध्याय चतुर्थ
स्त्री अस्मिता के प्रश्न

स्त्री अस्मिता का प्रश्न स्त्री की अपनी पहचान से जुड़ा हुआ है। लम्बे समय तक स्त्री की स्वतंत्र पहचान नगण्य थी और वह अपनी पहचान के लिए अपने आश्रयदाता पुरूषों पर निर्भर थी। भारत ही नहीं विश्व के दूसरे समाजों में भी स्त्री की आधी दुनिया को पहचान के सांस्कृतिक संकट से गुजरना पड़ा है। इतिहास में यह शोध का विषय रहा है कि आखिर किन परिस्थितियों में स्त्रियों को पुरूषों पर निर्भर होना पड़ा और वह पुरुष जाति के अधीन हो गई। पश्चिम के कई विद्वानों ने इसके ऐतिहासिक कारणों की खोज की और इसके सम्बन्ध में अपने मत प्रस्तुत किए।[1] स्त्रियों की अधीनता के सन्दर्भ में सभी विद्वान इस बात से एकमत हैं कि समाज में पितृसत्ता के उदय ने स्त्रियों के शोषण एवं दमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और अपने आप को सत्ता के केन्द्र में रखा जबकि महिलाएं हाशिए पर ढकेल दी गई। इसने स्त्रियों की अपनी पहचान भी उनसे छीन ली और स्त्रियां पुरूषों की अन्य सम्पत्तियों की तरह मात्र एक सम्पत्ति बनकर रह गई। एक बार सत्ता के केन्द्र में आ जाने के पश्चात् पितृसत्ता ने अपने हक में तंत्र और संस्थाएं विकसित की जिन्होंने हर तरह से स्त्री को पुरूष का गुलाम बना दिया। इन संस्थाओं में धर्म सबसे मजबूत संस्था थी जिसने हर तरह से इसी को दोयम दर्जे का नागरिक बना दिया। स्त्री की गुलामी की जकड़न 19वीं सदी में ही आकर ढीली हुई और उसकी अस्मिता के प्रश्न को लेकर बहस शुरू हुई। भारतीय समाज में भी पितृसत्तात्मक समाज की संस्था पायी जाती है। इसके साथ ही इसकी एक और विशिष्टता इसके साथ जुड़ी हुई है वह है यहाँ की ब्राह्मणवादी व्यवस्था। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने हिन्दू समाज को धर्म के साथ अनिवार्य रूप से जोड़ दिया

[1] भारत में स्त्री असमानता, एक विमर्श, गोपा जोशी, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं–2006

जिससे हिन्दू समाज धर्म से परिचालित होने लगा। यह धर्म ने ही निर्धारित किया कि एक स्त्री का स्थान समाज में कहाँ स्थित है।

हिन्दू समाज का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था और उससे उत्पन्न जाति–व्यवस्था है जिसमें ब्राह्मण को सर्वोच्च पद प्राप्त है। हमारे धर्मग्रन्थों में उसे देवता की तरह पूज्य माना गया है। उसे ही पढ़ने–लिखने का अधिकार दिया गया और वही समाज के नियमों का नियमन कर सकता है। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों के प्रणेता यही ब्राह्मण हैं जिनके लेखन को लगभग अपौरूषेय मान लिया गया है। भले ही स्वतंत्र भारत में एक नये संविधान की रचना की गई है किन्तु हिन्दू समाज की चेतना अभी भी उन्हीं धर्मग्रंथों से संचालित होती है। यही कारण है कि जाति व्यवस्था का कुचक्र आज भी तोड़ा नहीं जा सका है। अपने ब्राह्मणत्व और पुरूषत्व को बचाए रखने के लिए ऐसे सामाजिक–धार्मिक विधि–विधान तय किये गये जो पुरूष को केन्द्र में रखने का काम करते हैं तथा स्त्री को निचले पायदान पर। वर्णाश्रम–विभाजन में केवल पुरूष रहे और अपने–अपने वर्ग में स्त्रियों को पुरूषों के अधीन ही मान लिया गया।

हिन्दू समाज में पुरूष की प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा कारण यह था कि हमारे धर्मग्रन्थों में पुत्र को मोक्षदाता माना गया है।[2] धर्मभीरू हिन्दू समाज में पुत्र–प्राप्ति के लिए संस्कार (पुंसवन संस्कार एक ऐसा ही संस्कार है) तक निर्मित किये गये और पुत्र को ही पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया गया जिससे पितृसत्तात्मक समाज की रचना हुई। अतः पुत्र की लालसा अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए भी बढ़ी। तथाकथित मोक्ष और उत्तराधिकारी पाने की इस लालसा में स्त्रियां भी शामिल हो गई क्योंकि इससे उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती थी। शास्त्रों में पुत्र को वंश बढ़ाने वाला कहा गया है और पुत्रियों को पराये की सम्पत्ति। अतः पुत्र को सर्वाधिक महत्ता है। पुत्रियों को घृणास्पद एवं हेय माना गया। उनकी पारिवारिक स्थिति भी बिल्कुल नगण्य थी। पुत्रियों का पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार न था अतः पुत्र की तुलना में उनकी यह स्थिति स्वाभाविक ही थी।

---

[2] पण्डिता रमाबाई, दि हाई कास्ट वुमैन, अनुवाद,शंभु जोशी–हिन्दु स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन,संस्क.2006

मृणाल पाण्डे के 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास जो कि आजादी से पहले के भारतीय समाज को प्रस्तुत करता है उसमें हम पुत्र–जन्म एवं पुत्री जन्म के बीच के फर्क को साफ–साफ महसूस कर सकते हैं। उपन्यास में जब भी लड़कियों का जन्म होता है तो परिवार में मायूसी की लहर दौड़ जाती है और घृणा के मारे उसे "चिहड़ी"[3] तक कहा जाता है। पुत्री को जन्म देने वाली माँ की भी अपने ही घर में स्थिति खराब हो जाती है जिसके कारण उसे अपमान और तिरस्कार झेलना पड़ता हैं।[4] पुत्री जन्म को अशुभ बताने के लिये मिथक भी गढ़े गये हैं जैसे–"जब लड़की होती है तो धरती सात अंगुल रसातल को धँस जाती है।"[5] बेटी पैदा करने के पश्चात् माँ को परिवार और समाज की अवहेलना सहनी पड़ती थी। उसे यह बारम्बार जताया जाता था कि बेटी पैदा करके उसने कोई सम्मानजनक कार्य नहीं किया है। ऐसी परिस्थिति में माँ भी कन्या शिशु के प्रति उदासीन हो जाती है। समस्या तब और ज्यादा बढ़ जाती है जब नवाजात बच्ची के जन्म के बाद तुरंत घर में किसी भी मृत्यु हो जाये। चंदा (उपन्यास की स्त्री पात्र) जैसे ही बेटी को जन्म देती है उसका पति मर जाता है। उसकी मृत्यु का कारण जन्म लेने वाली बच्ची को मान लिया जाता है।[6] कन्या शिशु के प्रति हिन्दू समाज की ये धारणाएं समाज में किस तरह से अपनी जड़े जमा चुकी हैं इसके बारे में 18 वीं सदी की लेखिका पण्डिता रमाबाई अपनी पुस्तक "दि हाई कास्ट हिन्दू वुमैन" में लिखती हैं–

"अगर एक लड़की अपने भाई की मृत्यु के बाद जन्म लेती है या उसके जन्म लेने के तुरंत बाद परिवार में कोई लड़का मर जाता है; इन दोनों में से किसी

---

[3] देखेः मृणाल पाण्डे, पटरंगपुर पुराण, पृष्ठ संख्या–10

[4] वही : पृष्ठ संख्या–17

[5] मृणाल पाण्डे, पटरंगपुर पुराण, पृष्ठ संख्या–17

[6] मृणाल पाण्डे, पटरंगपुर पुराण, पृष्ठ संख्या–33

भी परिस्थिति में वह लड़की उसके माता–पिता एवं पड़ोसियों द्वारा लड़के की मृत्यु के कारण के रूप में देखी जायेगी, वह लड़की सभी के द्वारा निरंतर अप्रिय नामों से पुकारी जायेगी, उसे नगण्य समझा जायेगा, पीटा जायेगा, बुरा–भला कहा जायेगा, सताया जायेगा तथा उसका तिरस्कार किया जायेगा। कहने में अजीब लगता है परन्तु कुछ अभिभावक बजाए मन में यह सोचने के कि वह लड़की उनकी सुविधा, प्रेम के लिये बच गई है, अपने बोये हुए प्रिय पुत्र के शोक के प्रकटीकरण को इस निर्दोष लड़की के प्रति इन शब्दों में व्यक्त करते हैं "दुष्ट लड़की, उनके हू प्यारे लड़के की जगह मर क्यों नही गई? जन्म लेते ही तूने उसे हमेशा के लिए इस घर सें क्यों निकाल दिया? तू खुद लड़का बनकर क्यों नहीं आई? यह हम सबके लिए अच्छा होता कि तेरा भाई जिंदा रह जाता और तू मर जाती।"[7] उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में स्त्री का जन्म भी अभिशाप की तरह है। इस मानसिकता के पीछे का कारण सिर्फ जागरूकता की कमी या पुरातनपंथी विचारधारा ही नहीं है अपितु इसके गहरे सामाजिक–सांस्कृतिक कारण हैं। आधुनिक समय में भी कन्या–शिशुओं की हत्या या कन्या–भ्रूण हत्या जैसे कांड होते रहते हैं और स्त्री–पुरूष लिंगानुपात विषम ही है। समाज और परिवार में लिंगीय भेदभाव में कमी के बावजूद कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है।

भारत में स्त्रियों की दुर्गति का बड़ा कारण आर्थिक पक्ष भी है। स्त्री को भारत में पराया धन समझा जाता है। इसे पितृकुल द्वारा विवाह संस्कार कर उसे अपने वास्तविक घर यानी पतिगृह में भेजा जाता है। पिता द्वारा कन्यादान की किया विवाह संस्कार में सर्वविदित है। एक स्त्री के जीवन की विडम्बना ही है कि जिस घर में वह जन्म लेती है जहाँ उसका अपना कोई नहीं होता। अपने पितृकुल में भी वह पराई होती है व श्वसुर कुल में भी। माता–पिता को अपनी बेटी को उसके घर पहुँचा देने को बड़ी जल्दी होती है। अतः पुत्री का बाल–विवाह भी भारत में प्रचलित है। 'पटरंगपुर पुराण' की अधिकांश स्त्रियों का बाल विवाह हुआ है और स्वयं आमा का भी बचपन में विवाह हो गया था, यह उपन्यास में वर्णित है।[8]

---

[7] पण्डिता रमाबाई, दि हाई कास्ट वुमैन, अनुवाद,शंभु जोशी–हिन्दु स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन,संस्क.2006,पृ.सं.44

[8] मृणाल पाण्डे,पटरंगपुर पुराण,पृष्ठ संख्या–38

पुत्री के विवाह में पिता को बहुत सा–धन खर्च करना पड़ता है। बिन्दु के विवाह के अवसर पर उसके साथ आया हुआ दहेज शहर की स्त्रियों के बीच चर्चा का विषय बन जाता है। मृणाल पाण्डे ने दहेज की प्रवृत्ति को इस उपन्यास में प्रमुखता से उठाया है। वर्तमान में दहेज की यह प्रथा कुलीन लोगों में सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। बिन्दु समृद्ध परिवार से है और वह बहुत–सा धन दान–दहेज में अपने साथ लेकर आती है। इस वजह से उसे घर में बड़ा मान–सम्मान प्राप्त होता है। बिन्दु कुलीन घर की है उसके परिवार वाले अपनी हैसियत में चार–चाँद लगाने की ख़ातिर दिखावे के साथ वर–पक्ष को तीयल और दहेज से चमत्कृत कर देते हैं लेकिन यह तब समस्या बन जाती है जब अपनी बेटी का विवाह करना हो और परिवार सम्पन्न न हो। विवाह में दिया जाने वाला दहेज आर्थिक रूप सें कमजोर माता–पिता के लिए दुःखदायी साबित होता है क्योंकि वह अपनी मर्जी से अपनी हैसियत के अनुरूप दहेज नहीं देते बल्कि वर–पक्ष द्वारा कन्या–पक्ष पर जबरर्दस्ती लादा जाता है। दहेज से जुड़ी यह दुश्चिंता भी लड़कियों के प्रति माता–पिता की उदासीनता की बड़ी वजह बन जाती है।

चूँकि पुत्र वंश बढ़ाने के लिये एक पत्नी लाता है और उसके साथ दान–दहेज भी लाता है अतः वह लड़कियों से अधिक विशिष्ट बन जाता है। अगर बहू ससुराल में दान–दहेज अधिक लेकर आती है तब तो वह ससुराल में मान–सम्मान पाने की हकदार है और यदि कम लेकर आती है तो वह वहाँ भी उपेक्षित और तिरस्कृत जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती है। उसे दिन–रात ताने सुनने को मिलते हैं और वह समझ नही पाती कि अपना कहकर भेजे जाने वाले गृह में उसका अपना कौन है? आर्थिक रूप से कमजोर माँ–बाप के सामने अब जो भी विकल्प बचता है वह उसे तुरंत अपना लेते हैं और यह भी नहीं देखते कि इसमें बेटी का भविष्य क्या होगा?

मृणाल पाण्डे का एक उपन्यास है ''रास्तों पर भटकते हुए''।[9] यह उपन्यास समस्या के एक और पक्ष को उठाता है। उपन्यास की नायिका मंजरी पढ़ी–लिखी किन्तु गरीब घर की लड़की है। एक बहुत बड़े परिवार से उसके लिए रिश्ता आता

---

[9]मृणाल पाण्डे, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन

है। उसकी विधवा माँ बहुत खुश होती है और मंजरी का विवाह सम्पन्न हो जाता है। वहाँ जाकर मंजरी को अपनी हकीकत का पता चलता है। उसका पति एन. आर. आई. है जिसने विदेश में किसी अंग्रेज युवती से विवाह कर लिया है। भारत में रहने वाले माता–पिता को यह पसंद नहीं आता और वे जबरदस्ती उसका विवाह मंजरी से कर देते हैं। बेटा किसी भी हालत में अपनी विदेशी पत्नी को छोड़ने के लिए राजी नहीं होता और मंजरी को छोड़ विदेश चला जाता है। अब मंजरी को अपने बलि का बकरा बनाए जाने के षड्यंत्र का पता चलता है। वह सास–ससुर के पास कुछ–दिन रहती है, फिर तलाक हो जाता है। श्वसुर उसे शहर के मंहगे इलाके में एक मकान और रूपय–पैसे दे अपने कर्तव्य से इतिश्री कर लेते हैं। मंजरी पत्रकारिता का पेशा अपनाकर अपनी रोजी–रोटी का जुगाड़ कर लेती है। सोचने वाला विषय यह है कि मंजरी की गरीबी का फायदा उसके श्वसुर ने अपने पक्ष में उठाया। मंजरी की माँ भी दहेज नहीं दे सकती थी। अतः जैसे ही उसे यह रिश्ता मिला उसने चट स्वीकार कर लिया लेकिन मंजरी का पूरा जीवन अभिशप्त हो गया। मंजरी का पति ही इस मामले में थोड़ा सा ठीक निकला जिसने मंजरी को विदेश ले जाकर उसे नौकरानी बनाकर रखने की बजाय उसे तलाक देकर मुक्त कर देता है। अन्यथा कई एन. आर. आई. पति भारतीय पत्नियों से यह सब भी करवाते हैं।

उपन्यास में मंजरी पढ़ी–लिखी है। अतः वह ससुर के दिये हुए मुआवजे के रूपये–पैसे के बिना भी अपना भार स्वयं उठा सकती है। वह नौकरी कर आत्मनिर्भर और आत्मविश्वास दोनों हासिल कर लेती है। अन्यथा कम पढ़ी'–लिखी या निरक्षर लड़कियां दूसरों पर निर्भर हो जाती हैं। जहाँ उनके शोषण से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। भारत में स्त्री की शिक्षा का इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं है और ना ही अभी भी हर लड़की की शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा हैं कि वह नौकरी कर सके। भारत की पारंपरिक शिक्षा नीति नौकरी के अनुकूल नहीं है। यह एक कटु सत्य है और पढ़ी–लिखी लड़कियों की अधिकांश संख्या इसी तरह की है।

स्त्रियों की शिक्षा को लेकर भारतीय समाज अब जाकर जागरूक हुआ है। इससे पहले की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। 'पटरंगपुर पुराण' की बाल–बहुएं इसका उदाहरण हैं। इन पात्रों की शिक्षा–दीक्षा की जिम्मेदारी न तो माता–पिता

उठाते है और ना ही ससुराल वाले। आमा का विवाह 10 वर्ष की उम्र में ही हो जाता है और ससुराल में भी वह बाल–सुलभ हरकतें किया करती है। मायके में मिठाइयों के आने पर सास द्वारा छिपाकर रखी गई मिठाइयों को वह और उसके आठ वर्षीय देवर चनिका चुराकर खा–पी लिया करते हैं।

"आमा बताती थी, कि मिठाई लौटाई नहीं कभी–भी उनकी सास चम्पा बुबु ने। पिटारे में चयाप्प के धर देने वाली हुई । आमा और उनके देवर चनिका दिन में उनके सो जाने पर चाभी उड़ा के भकाभक खाने वाले हुए।"[10]

ससुराल में आने पर सास का पूरा आधिपत्य बाल–बहू पर स्वाभाविक रूप से हो जाता है क्योंकि वही अब उसकी अभिभावक होती है। हर संभव उसकी कोशिश बहू को पितृसत्तात्मक मूल्यों के अनुसार ढालने की होती है। इसके लिए बहू के साथ वह कैसा भी बर्ताव करे, वह सब–कुछ पारिवारिक सदस्यों द्वारा मान्य होता है। कई बार तो अमानवीय हरकतें भी असंवेदनशील सासें किया करती हैं। उदाहरण स्वरूप–

"झूठ जो क्या कह रही हूँ, क्रान्ति की जेड़जा (ताई) से पूछना कि उनकी सास ने कैसे ज्यादे हँसने पर गरम चिमटे से उनकी कलाई चीस (जला) दी थी कि 'पतुरियों जैसा खितखिताट पाड़ती है री? करके।"[11] बेचारी बाल–बहू घर परिवार में डरी सहमी सी रहती है। आमा की सास चम्पा बहू हर वक्त आमा पर रौब जमाती रहती है। आमा के मायके से आने वाले भेंट पर भी वह आमा को ताने मारा करती है–"ये छोड़ गये समधी जी अपनी लाडली कने"।[12] आमा के देवर चनिका का उदाहरण है जो उम्र में आमा से छोटे भी है–"आहा अजब रे, बोज्यू के घर की बासमती। उधर ताल–बाजार तक में पटरंगपुरिये कह रहे थे कि ऊपर बिष्णुकुटी में पाँच अंगुल लम्बें दानों की बासमती पकी है करके।"[13]

ऐसी परिस्थिति में सम्मान की बात तो दूर ससुराल में लड़की की हैसियत एक साधारण मनुष्य की भी नहीं है। अक्सर ऐसे मामलों में देखा जाता रहा है कि

---

[10] मृणाल पाण्डे,पटरंगपुर पुराण,पृष्ठ संख्या–38
[11] पटरगंज पुराण, पृ0सं0–103
[12] पटरपुर पुराण पृ0सं0–40

[13] वही ,पृ. सं. 40

सासें अपना आधिपत्य बहुओं पर इसलिए बनाये रखना चाहती हैं कि वह घर–परिवार में सत्ता की शक्ति अपने पास रख सकें। उन्हें यह भय सताता रहता है कि परिवार पर से उसका नियंत्रण हट कर कहीं बहू के पास न चला जाये। प्रश्न यह है कि जब स्त्रियों के पास सत्ता में किसी तरह की भागीदारी का अधिकार नहीं है तो घर में कैसे एक स्त्री दूसरी स्त्री पर अपना आधिपत्य जमाती है? गहराई से देखने पर इसका उत्तर भी पितृसत्ता की संरचना में ही प्राप्त होता है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित है जिसमें परिवार का मुखिया होता है। वह बाहर समाज में अपने परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। मुखिया की पत्नी अपने पति की सत्ता का उपभोग घर में उसकी बदौलत करती है। वह परिवार के भीतर अपना नियंत्रण रखती है। दरअसल पितृसत्ता ने बड़ी चालाकी अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए स्त्री को सत्ता से बेदखल कर दिया और फिर उसे सुदृढ़ बनाये रखने के लिए स्त्रियों को ही अपना साधन भी बना लिया। स्त्रियों को पढ़ने–लिखने से दूर कर दिया गया और उन्हें इस प्रकार से प्रशिक्षित किया गया ताकि वे पितृसत्तात्मक मूल्यों को स्थापित करने में सहयोग दे सकें। कहना न होगा कि पितृसत्ता अपने इस मकसद में कामयाब रही। स्त्रियों की पिछड़ी चेतना पितृसत्तात्मक मूल्यों को स्थापित करने में पुरूषों की बराबर सहयोगी बनी रही।

समय के परिवर्तन के साथ–साथ संयुक्त परिवार प्रणाली धीरे–धीरे टूटने लगी तब परिवार में सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ और परिवार के मुखिया की आर्थिक स्थिति में भी बदलाव आया। बेटे भी पिता की भाँति आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने लगे तब परिवार के भीतर भी दूसरा शक्ति संतुलन स्थापित हुआ। अब सास की बजाय बहू शक्ति का नया केन्द्र बन गई। इस सत्ता परिवर्तन में पितृसत्ता को भी कोई नुकसान नही पहुँचा क्योंकि सिर्फ आर्थिक केन्द्र बदला था स्त्री की पितृवादी सोच नही। एक तरफ चम्पा बूबु और आमा हैं तो दूसरी तरफ गोपाल डिप्टी की बहू बिन्दू और उसकी सास। चम्पा बहू के जीते जी आमा की स्थिति घर में दयनीय ही थी लेकिन बिन्दु के यहाँ शक्ति के केन्द्र में बिन्दु है। वह अपनी सास की किसी भी बात को मानने–न–मानने के लिए स्वतंत्र है। वह उसकी आज्ञा को भी टालने में पूर्णतया समर्थ है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि गोपाल डिप्टी

की ही तरह आमा के पति हंसादत्त भी नौकरी करते थे तब फिर आमा की स्थिति खराब क्यों रही? दोनों की परिस्थितियों में यह भिन्नता क्यों आयी?

दरअसल पितृसत्ता ऊपर से तो घर के अन्दर के शक्ति सन्तुलन के प्रति बाहर से तो निरपेक्ष दिखाई पड़ती है किन्तु वह वास्तविक सच्चाई नहीं है। पितृसत्ता अपने हिसाब से परिवार में स्त्रियों की सत्ता को परिवर्तित या अपरिवर्तित करने का अधिकार हमेशा अपने पास ही रखती आई है। बिना उसकी सहमति के यह सम्भव ही नहीं। बिन्दु मायके के समृद्ध परिवार से आई है, डिप्टी कलक्टर की पत्नी है, ससुर से अधिक मान–सम्मान पाती है, अतः घर में उसका अधिक रोब–दाब है। जबकि आमा के साथ ससुराल में पितृसत्ता का वरद हस्त उसे प्राप्त नहीं है। पितृसत्तात्मक मूल्यों का घर में अधिक कड़ाई से आमा की अपेक्षा चम्पा बुबू बेहतर ढंग से करती है अतः आमा का पक्ष कमजोर है। हालांकि आमा भी मायके से समृद्ध है किन्तु परिवार में सत्ता के लिए यह काफी नहीं। उसे पितृसत्ता का विश्वास हासिल होना चाहिए।

इसके अलावा समय के परिवर्तन के साथ स्त्रियों की सोच में आया बदलाव भी इसकी एक बड़ी वजह बनता है। बिन्दु की पारंपरिक सोच अब बिल्कुल वैसी नही है जैसी आमा की है। उसकी पारंपरिक सोच अभी भी उन्हीं मान्यताओं और आदर्शों से संचालित होती है जिसे हिन्दू समाज में एक लड़की को बचपन से घुट्टी में पिलाये जाते रहे हैं। आमा के सामने वही सीता–सावित्री और द्रोपदी के आदर्श हैं जिन्होंने अपने परिवार और बुजुर्गों के आदेश को अपने अस्तित्व से बढ़कर माना था। आमा की सोच में वही आदर्श अभी जीवित हैं इसलिए जब विक्टोरिया कॉटेज न जाने का पितृसत्ता का आदेश होता है तो वही आमा जो चम्पा बूबु के ताने का जवाब दे दिया करती है लेकिन अपने श्वसुर से कुछ नही कह पाती। मायके का मोह उसे हमेशा सताता रहता है और वह घर के खिलाफ विद्रोह भी कर देती है। एक दिन चुपचाप अपने मायके चली जाती है। इस दुःसाहस पर पूरी पितृसत्ता का कोप फूट पड़ता है। उसे घर से निकाल कर पति का दूसरा विवाह कर देने की धमकी दी जाती है। तब आमा डर जाती है और किसी से कुछ कह नहीं पाती। वह वहाँ पर बिल्कुल बेबस हो जाती है–

"आमा वहाँ पड़ोस के घर से नहाकर, धोती बदल के पीछे के रस्ते जो घर में घुसती है तो क्या देखती है कि सारा आंगन उनके धड़े के बूढ़ों से भरा है। गीले सिर थर–थर काँपती खड़ी हो गई आमा। पैर के नीचे धरती डोल गई हो। बुड़ज्यू का गुस्सा जैसे शेषनाग फनफना रहा हो। कहने के लिए हुए कि हमारे लिए मर गई करके।"[14] आमा के भीतर विरोध का साहस तो है किन्तु विद्रोह का नहीं। आमा की अपेक्षा बिन्दु थोड़ी सी पढ़ी–लिखी है और समय के अनुसार उसकी चेतना में थोड़ा–सा बदलाव आया है। उसके आदर्श भी अब वह नहीं है जो आमा के हैं। वह अपने अधिकार को पहचानती है। आमा अपने सास–ससुर और देवर की सेवा–सुश्रुषा के लिए सदा ससुराल में रही है किन्तु बिन्दु अपने पति के साथ बाहर जाकर घर बसाने की हैसियत रखती है। समय आने पर वह चली भी जाती है लेकिन आमा इतना बड़ा साहस नहीं कर सकती। यहाँ पर बिन्दु पितृसत्ता को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है किन्तु यह सच नहीं है। वह पितृसत्ता के खिलाफ इस उपन्यास में कहीं भी कोई चुनौती नहीं देती। उसे पितृसत्ता से केवल कुछ सुविधाएं प्राप्त है और उसका ही वह उपभोग कर रही है।पितृसत्ता को पालने–पोसने में ये स्त्रियां भी उतनी ही सहायक होती हैं जितनी की अन्य। कुछ चीजों में तो बिन्दु स्वयं बहुत ढकोसलेबाज है। उसके चरित्र में परम्परानुमोदित कई ऐसे रूप प्राप्त होते हैं जो उसकी सतही सोच को उजागर करते हैं। वह दहेज की परम्परा को खूब पालती–पोसती है, ब्राह्मण संस्कारों का विधिवत आयोजन करती है, छुआछूत में विश्वास रखती है आदि। यही नहीं वह हद दर्जे की असंवेदनशील औरत भी है और हर–जगह अपना नफा–नुकसान देखकर ही अपना व्यवहार प्रदर्शित करती है। अगर वह संवेदशनशील होती तो अपनी सास के साथ बुढ़ापे में बुरा व्यवहार कत्तई न करती।

मृणाल पाण्डे ने उपन्यास में आमा और बिन्दु के चरित्र के अन्तर को बड़े ही सतही ढंग से व्याख्यायित किया है ऐसा लगता है वह जल्दी से किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहती हैं। उन्होंने दो प्रदेशों के अन्तर को उनके चरित्र का अन्तर मान लिया है। लेखिका की नजर में पहाड़ी स्त्रियां सीधी–सादी होती हैं और अगर उनमें

---

[14] पटरंगपुर पुराण, पृष्ठ सं0, 50

किसी तरह की चालाकी आती हैं तो वह मैदानी इलाकों के लोगों के सम्पर्क के कारण आती है। बिन्दु मैदानी इलाका बुलंदशहर से आयी है। वह आती है तो पटरंगपुर में दहेज का चलन बढ़ जाता है। वह पहली बार इस शहर में घर के पुराने बर्तनों को बेचकर नये स्टील के बर्तन रखने के चलन की शुरूआत करती है। उसी को देखकर पहाड़ी लड़कियों में फैशन और दिखावा की प्रवृत्ति बढ़ती है।

यह सत्य है कि के पटरंगपुर में आने से पहले पहाड़ी स्त्रियां इतनी दुनियादारी नहीं जानती लेकिन अगर स्त्री पक्ष से देखें तो इन सभी कृत्यों के पीछे क्या–पितृसत्ता की सहमति नही? मैदानी प्रदेश से आयी एक स्त्री घर–परिवार के रीति–रिवाज को बदल रही है तो यह बिना पितृसत्ता के सहयोग से कैसे सम्भव हो सकता है? वह स्वयं कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं है, ना ही किसी ऊँचे पद पर बैठी है और ना ही आर्थिक रूप से स्वतंत्र है फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है?

बिन्दु का पति गोपाल डिप्टी कलक्टर है। श्वसुर शहर के प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्ध रखता है। अतः शहर में अपनी सामाजिक हैसियत और रूतबे को दिखलाने के लिए वह अपनी बहू का सहारा लेते हैं। पिता अपने बेटे गोपाल डिप्टी की शादी बहुत ऊँचे खानदान में तय करते हैं जहाँ से उन्हें बहुत दान–दहेज मिलता है साथ ही सामाजिक कद भी बढ़ता है। शहर के लोग बारात की शोभा और घरातियों के आवभगत को देखकर कई दिनों तक शहर में उसकी चर्चा करते हैं। पिता–पक्ष द्वारा दिये गये दान– दहेज की प्रशंसा करते हैं। इसमें विक्टोरिया कॉटेज की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

सामाजिक प्रतिष्ठा की धाक घर की स्त्रियों से भी जमती है। वे गहनों–कपड़ों से लदी–फदी भौतिक सुख–सुविधाओं का उपभोग करती हैं तो दूसरे घर की स्त्रियां उसको सम्मान की नजर से देखती हैं और उनका अनुसरण भी करती हैं। यह सब पितृसत्ता के इशारे पर ही होता है। बिन्दु अगर दहेज देती है तो यह दहेज उनका परिवार और पति ही उपलब्ध कराते हैं। यदि वह घर के पुराने बर्तन–भांड़ में बेचती है तो उसमें उसका पति स्वीकृति देता है। वह अपनी बेटी की शादी का फैसला लेती है तो उसमें भी उसके पति की सहमति है। अन्यथा वह यदि इतनी ही सामर्थ्यवान रहती जो अपने फैसले खुद ले सके तो उसका पति उससे विशेष प्रेम नहीं रखता तो वह उसे छोड़ क्यों नहीं देती? या फिर उसके स्वयं के

बेटे विदेशी लड़कियों से शादी करते हैं यह नापसंद होने के बावजूद उसे स्वीकार करना पड़ता है क्योंकि वह उन्हें रोकने में समर्थ नहीं है। कारण स्पष्ट है कि बिन्दु वही कर रही है जो घर के पुरूष चाहते है या जिनमें उनकी अनुमति है।

भारत में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता का स्वरूप एवं चरित्र लगभग एक ही जैसा है चाहे वह पहाड़ी प्रदेश हो या मैदानी। इसलिए स्त्रियों की समस्याएं भी कमोबेश एक जैसी ही होती हैं। समय के साथ–साथ पितृसत्ता के स्वरूप में अन्तर तो आया लेकिन शोषण की प्रवृत्ति नहीं बदली। दरअसल पितृसत्ता ने समय के साथ अपने–आप को थोड़ा सा लचीला बनाया जिसकी वजह से स्त्री के जीवन में भी बदलाव आया।

'अपनी गवाही' उपन्यास में स्त्री के जीवन मे आये बदलाव को लक्षित किया गया है। कथानक के स्तर पर भी यह एक बिल्कुल अलग उपन्यास है।[15] 'पटरंगपुर पुराण' से इतर आजादी के बाद का भारतीय परिवेश है जिसमें उच्चवर्गीय शिक्षित स्त्री की एक ऐसे क्षेत्र में संघर्ष और सफलता की कहानी है जहाँ पुरूषों का एकाधिकार माना जाता है। मामूली सी पत्रकार की नौकरी से शुरूआत कर समाचार एजेन्सी की सम्पादक बनने तथा उससे भी आगे बढ़कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सम्पादक एवं समाचार वाचिका बनने तक की कहानी है। यह उपन्यास एक जीवट वाली स्त्री को साकार करता है जो आधुनिक युग की बदलती हुई स्त्री का चरित्र हमारे सामने रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'अपनी गवाही' मृणाल पाण्डे का अपने ही जीवन का लेखा–जोखा है जिसे उन्होंने आत्मकथा की बजाय उपन्यास का रूप दे दिया है। भारतीय मीडिया को उन्होंने स्वयं बहुत करीब से देखा व उसे समझा है अतः उसकी हलचलें व उठापटक इस उपन्यास में भी दर्ज हुए हैं साथ ही भारतीय राजनीति की गतिविधियां भी वास्तविक सच्चाई से मेल खाती हैं जिसकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता।

यह उपन्यास बदलती हुई परिस्थितियों में भारतीय समाज के द्वन्द को उभारता है। भारतीय स्त्री की पारम्परिक छवि धीरे–धीरे बदल रही है और वह अपनी स्वतंत्र पहचान के लिए समाज में कड़ा संघर्ष कर रही है। कृष्णा (अपनी

---

[15] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन

गवाही' की मुख्य पात्र) 'फलाँ की बीबी, फलाँ की बेटी, फलाँ की बहू'[16] से अलग अपने मन की करना चाहती है। वह पढी–लिखी, स्वतंत्र, स्वाभिमानी स्त्री है जो निर्णय लेने की क्षमता से युक्त है। अभी तक स्त्रियां अपने बारे में निर्णय लेने में सक्षम नहीं थी और घर के पुरूष या मुखिया जो कहते थे वही करने के लिए वह बाध्य थी, इसके पीछे का तर्क यह होता है कि स्त्री में सही निर्णय लेने की क्षमता ही नहीं है। जब–तक स्त्रियों के पास ज्ञान का हथियार नहीं था तब–तक इस धारणा को लेकर स्त्रियों में भी कोई प्रतिरोध नहीं दिखता था। लेकिन शिक्षा प्राप्त स्त्रियां अपने जीवन से सम्बन्धित फैसले का अधिकार अपने पास ही रखना चाहती हैं। कृष्णा अपने फैसले पूरे आत्मविश्वास के साथ लेती है। उसका निर्णय राह की बाधाओं को बताने वाले सलाहकारों से भी नहीं प्रभावित होता है। उसके मुन्नू चाचा हिन्दी पत्रकारिता में काम करने के फैसले का जोरदार विरोध करते हैं और कहते हैं कि जाना ही है तो अंग्रेजी पत्रकारिता में जाओ। उसकी माँ पार्वती भी पेशे की कठिनाइयों और पारिवारिक जिम्मेदारियों का हवाला देकर कहती है कि क्या वह कर पायेगी, कृष्णा दृढ़ता से कहती है कि इस कार्य को करने के लिए हर तरह से सक्षम है। कृष्णा की क्षमता, प्रतिभा और दृढ़ता के सामने वे सभी परेशानियां दम तोड़ती नज़र आती हैं जिन्हें दिखाकर स्त्रियों को वैसे काम करने से बचने की सलाह दी जाती है।

एक समय में स्त्रियों के लिए डॉक्टरी या अध्यापक का पेशा ही उसके अनुकूल माना जाता था लेकिन अब स्थिति बदल रही है और पुरूष वर्चस्व वाले पेशों में स्त्रियां भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगी हैं। समाज द्वारा अब इसे स्वीकार भी किया जाने लगा है लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में पले–बढ़े लोगों की मानसिकता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। अधिकांश पुरूष यह कहते हुए मिलते है कि स्त्रियां बेवजह उनके क्षेत्रो में प्रवेश कर रही हैं और उनके अधिकार छीन रही हैं। मुन्नू चाचा की यही मान्यता है।[17] स्त्रियों को कार्यस्थल पर अपने–आप को साबित करना पड़ता है कि वे भी पुरूषों की तरह ही क्षमतावान हैं।

[16] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही पृष्ठ संख्या–9
[17] मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही पृ0 सं0–24

कृष्णा को अपने आप को साबित करने के लिए पत्रकारिता में वरिष्ठ पद होते हुए भी मामूली–सा काम करना पड़ता है क्योंकि उसके बॉस को नही लगता कि वह गंम्भीर काम कर सकती है। उसे सम्पादक के पद पर बैठकर भी पुरूष सहकर्मियों की ऊल–जलूल सलाह सुननी पड़ती है क्योंकि "महिला होकर भी सम्पादक बनने के चलते और उसे पुरूषों से बच्चों की तरह निरन्तर सलाह और चेतावनी पाने की जरूरत है।"[18] वह सुनने के लिए मजबूर है क्योंकि वह एक स्त्री है। कामकाजी स्त्री को सदैव अधिक काम करके अपनी प्रतिभा का उदाहरण देना पड़ता है। नाओमी वुल्फ ने एक लेख में एक टी.वी. पत्रकार का कथन उद्घृत किया है–

"हमें पुरूषों से दुगुना–तिगुना काम इसलिए करना पड़ता है कि हम सिद्ध कर सकें कि हम महज सुन्दर और मूर्ख (बिम्बो) नहीं है। हमारे पास भी दिमाग है, बुद्धि है और जब यह साबित हो जाता है तो जाने क्यों, हमारे पुरूष सहकर्मियों को इसे स्वीकारना अपमानजनक लगता है।"[19] उपन्यास में भी कृष्णा के सन्दर्भ में हम जे.पी. और देवेश्वर जैसे पात्रों की ईर्ष्या को देख सकते हैं। दोनो ही कृष्णा के सहकर्मी हैं, उसके समान ही उच्च शिक्षा–प्राप्त हैं लेकिन कृष्णा को प्रतिभावान मानने में उनका पुरूष अहंकार आड़े आने लगता है। अतः उसकी सफलता का राज उसका रईस घर से सम्बन्धित होना मान लिया जाता है । कृष्णा के पद के गुरूत्व के कारण वह उसे कुछ कह नहीं पाते तो उसकी उपेक्षा कर अपने अहम् को तुष्ट करने की कोशिश करते हैं।

अगर कोई स्त्री अपने कार्यक्षेत्र में पुरूष के समान प्रतिभा या कार्यक्षमता का परिचय देती है तो उसके पुरूषज्ञ सहकर्मी उसे 'मेल फेमिनिज्म'[20] की संज्ञा देते है अथवा उसके निजी जीवन को लेकर उसे अपने निशाने पर रखते हैं। उन्हें लगता है कि वह स्त्री खुद को पुरूष की तरह से प्रस्तुत करना चाहती है।

---

[18] वही, पृष्ठ संख्या–129

[19] नाओमी कुल्फ, इक्कसवी सदी का नारीवाद हिन्दी अनुवाद, प्रगति सक्सेना 'पितृ सत्ता के नए रूप, पृष्ठ संख्या–109

[20] मेल फेमिनिज्म–'पुरूष स्त्रीवाद'

कार्यस्थल पर महिला का यौन–शोषण या छेड़खानी की घटनाएं आम बात हैं। कामकाजी औरतों को पुरूष–समाज में अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता है। उनकी नज़र में घर से बाहर निकल कर काम करने वाली औरत इज्जत वाली नहीं होती और उसकी इज्जत पर हाथ डालने का मौका वे भी नहीं छोड़ना चाहते। 'हिन्दभारती' के नीरज जी कृष्णा की महिला सहकर्मी को इसी तरह की नजर में देखते है। "अमेरिका में कार्यस्थल पर होने वाले यौन–शोषण और छेड़छाड़ अनीता हिल के यौन–उत्पीड़न से सम्बन्धित आरोपों की सुनवाई की गई। इस मुकदमें ने कार्यस्थल पर हावी महिला–विरोधी माहौल पर पड़ा पर्दा हटा दिया। इससे पहले केवल मनोरंजन की दुनिया में सक्रिय औरतों के बारे में में ही माना जाता था कि उनका यौन शोषण होता है। 'कास्टिंग कोच' अर्थात पीठ के बल पर हिरोइन बनने का मुहावरा आम था। लेकिन हिल प्रकरण ने बताया कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी यह समस्या उतनी ही व्याप्त है।[21] मृणाल पाण्डे ने इस महत्वपूर्ण सवाल को इस उपन्यास में इंगित भर कर के छोड़ दिया है। कृष्णा को शायद इस तरह की अयाचित स्थिति का कोई अनुभव नहीं हुआ क्योंकि वह बहुत बड़े घर सें सम्बन्धित थी और आई. ए. एस. पति की पत्नी थी। या फिर अपने पत्रकारिता काल में बहुत जल्दी सम्पादक के पद पर पहुँच गई अतः इस पद की गुरूता ने भी उसे बचा लिया। छोटी–मोटी हरकतों को उसके द्वारा नजरअंदाज करना वह सीख चुकी थी अतः उसके लिए ऐसी कोई समस्या नहीं आई। लेकिन एक साधारण स्त्री के लिए यह समस्या उसकी अस्मिता पर हमला है जिसका प्रतिकार भी वह नहीं कर पाती। प्रतिकार के एवज में उसे नौकरी से निकालना अधिक सुविधाजनक है। लवलीन के प्रकरण में पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि स्त्री की सफलता का कारण उसकी देह को माना जाता है न कि उसकी प्रतिभा या कार्य कुशलता को। अतः कामकाजी स्त्री के लिए अपना स्त्री होना ही सबसे बड़ी चुनौती बन जाती है लेकिन इन परिस्थितियों को भी स्वीकार कर आगे बढ़ रही है और उनका सामना कर रही है। घर की जिम्मेदारियां भी वह कुशलतापूर्वक निभा रही है। कृष्णा के सामने भी

---

[21] पितृसत्ता के नये रूप सम्पादक राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे, लेख– भूमंडलीकरण का प्रतिभूगोल–अभय कुमार दुबे, पृष्ठ सं0–81।

यह अन्तर्द्वन्द्व आता है कि वह पारिवारिक जिम्मेदारियां ठीक से शायद नहीं निर्वाह कर पायेगी लेकिन अपने काम को वह एक बार भी छोड़ने की कोशिश नहीं करती जो आमतौर पर परिवार के दबाव में कामकाजी स्त्रियों को छोड़ना पड़ता है। वह काम तभी छोड़ती है जब उसका मन करता है और उसकी स्वतंत्रता छिनने का दु:ख उसे उस काम को करते रहने की गवाही नहीं देता।

स्त्रीवादी कथाकार के तौर पर मृणाल पाण्डे का नाम अग्रणी लेखिकाओं में लिया जाता है लेकिन इनके उपन्यासों की चर्चा बहुत कम हुई है। दरअसल साहित्यिक स्त्री विमर्श के केन्द्र में लम्बे समय तक दैहिक मुक़्ति का सवाल ही प्रमुख रूप से उठाया जाता रहा और स्त्री मुक्ति के अन्य मुद्दे हाशिए पर रहे तथा इसी में समाहित मान लिए गये। कुछ अग्रणी लेखिकाओं ने बड़े ही आक्रामक तेवर में अपने सामने पुरूष पक्ष को कटघरे में खड़ा करके उन्हें लताड़ा है। उनकें इस स्त्रीवाद को आलोचना जगत में व्यापक स्वीकृति मिली और उनके कथनों को स्त्री के पक्ष में उद्धरण के तौर पर इस्तेमाल किया गया परन्तु स्त्रीवाद की पक्षधरों को यह जरूर मानना पड़ेगा कि देहवाद सम्पूर्ण स्त्रीवाद नहीं है, वह उसका एक महत्वपूर्ण अंग जरूर है और यह भी सच है कि स्त्री की दैहिक मुक्ति स्त्रीवाद से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है परन्तु पुरूष को अपना दुश्मन मानना उसके अपने ही आदर्शों के ख़िलाफ है जिसके पक्ष में यह आंदोलन शुरू हुआ था।

पश्चिम की कट्टर नारीवादियाँ जिन्होंने स्त्री–पुरूष सम्बन्धों के खिलाफ यह नारा दिया था कि "तुम दमनकारी पर कैसे विजय प्राप्त कर सकती हो जब हर रात तुम उससे सहवास करती हो।"[22] इस नारे ने समलैंगिकता की एक नई परिभाषा गढ़ी और स्त्रीवादी आंदोलन के दूसरे चरण में इसने अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की। इस समय स्त्रीवाद अपने उस कट्टर रूप को दुनिया के सामने रख रहा था जो पुरूष विरोधी था, लेकिन जल्दी ही स्त्रीवाद को इसकी कमियाँ नज़र आने लगी और अतिरंजना ने संतुलन का रूप धारण करना शुरू कर दिया। बेट्टी फ्रीडन और जर्मेन ग्रीयर के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती लेखन में यह अन्तर साफ नजर

---

[22] मारीन मेजन, देवेन्द्र इस्सर, स्त्री मुक्ति के प्रश्न, लेख स्त्री–समलैगिंक पुरूष से मुक्ति, संवाद प्रकाशन, संस्करण, अक्टूबर
2007 (पहला) पृष्ठ संख्या– 69

आया।[23] बेट्टी–फ्रीडन ने माना कि "अब मैनें यह सुनना शुरू कर दिया जो मैं पहले कभी नहीं सुनना चाहती थी, उन महिलाओं के भय और भावनाओं की आवाज जो हमारे आंदोलन को संशय से देखती थी, नारी मुक्ति का प्रथम चरण समाप्त हो गया है, हमने कुछ उग्र नारे भी दिये थे। उसका भी प्रभाव पड़ा, लेकिन समय का तकाजा है कि हम पुरूष और नारी के परस्पर संबंधों में और परिवार और कैरियर के बीच संतुलन स्थापित करें।"[24] बेट्टी फ्रीडन की यह मान्यता यह दर्शाती है कि नारीवाद ने समय रहते अपने स्वर को मद्धिम कर लिया अन्यथा वह एक पुरुष विरोधी दर्शन बनकर रह जाता। मृणाल पाण्डे का नारीवाद बहुत संतुलित और सधा हुआ है और वह बिना किसी अतिरंजना के उनकी स्त्री विमर्श की पुस्तकों में प्रकट हुआ है। साहित्यिक उपन्यासों में कथा के प्रवाह में वह सामाजिक ताने–बाने के साथ आया है न कि ऊपर से आरोपित है। उपन्यासों में कोई भी पुरूष पात्र विरोधी के रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ है। वैसे भी इनके उपन्यासों में पुरूष पात्रों की उपस्थिति बहुत कम है और स्त्री पात्र ही अधिक हैं। जो भी पुरूष पात्र हैं वह किसी स्त्री पात्र के खास निशाने पर नहीं हैं। 'पटरंगपुर पुराण' में मातृवंश से सम्बन्धित पीढ़ियों का इतिहास दिया गया है जो ध्यानाकर्षित करता है क्योंकि हमारे समाज में पितृवंश से पीढ़ियों का इतिहास निर्मित होता है मातृवंश से नहीं। यही वजह है कि परिवार में पुत्रियों के होने के बावजूद अगर पुत्र न हो वंश को समाप्त मान लिया जाता है। लेखिका का सम्पूर्ण ध्यान इस उपन्यास में स्त्रियों के जीवन–संघर्ष पर केन्द्रित है इसलिए पुरूष पात्रों के चरित्र चित्रण पर वह ज्यादा ध्यान नहीं दे पाई हैं।

'अपनी गवाही' में जे. पी., कृष्णन जैसे कुछ पुरूष पात्र अवश्य उभरकर आए हैं जो पेशेवर पत्रकारिता में आपस में प्रतिद्वन्द्वी हैं और शुरू में कृष्णा से ईर्ष्या भी करते हैं परन्तु एक स्त्री को लेकर उनकी क्या सोच है यह उपन्यास में पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाता। कृष्णा का पति जरूर एक ऐसा पात्र है जो उपन्यास का नायक होने की आदर्श छवि रखता है। वह कृष्णा के जीवन के हर सुख–दुख का

---

[23] यही पृ0सं0 –129

[24] वही पृ0सं0–37

सच्चा साथी है। वह उच्च–शिक्षित एक आई. ए. एस. ऑफिसर है। वह अपनी स्त्री की स्वतंत्रता और निजता का ध्यान वैसे ही रखता है जैसे अन्यों का रखता है। इस मामले में अन्य भारतीय पतियों से वह बिल्कुल अलग है जो पत्नी की स्वतंत्रता और निजता पर अपना अधिकार जमा लेते हैं और उसके जीवन से सम्बन्धित हर फैसला स्वयं करने लगते हैं चाहे पत्नी कितनी भी पढ़ी–लिखी और अपना फैसला स्वयं लेने में सक्षम क्यों न हो। जब भी कृष्णा परेशान होती है तो वह उसे भावनात्मक सहयोग देता है और उस स्थिति से निकलने में कृष्णा की हरसंभव मदद करता है। घर–परिवार की जिम्मेदारियों को उठाने में भी वह अपना सहयोग देता है। वास्तव में कृष्णा का पति आधुनिक युग का वह पुरुष है जो स्त्री को अपनी सम्पत्ति नहीं एक मनुष्य समझता है तथा स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बराबर की सहभागिता में विश्वास जताता है। परन्तु उपन्यास में लेखिका ने उसे बहुत कम जगह दी है यहाँ तक कि उपन्यास में उसका नाम भी नहीं आया है। कृष्णा ने सर्वत्र उसे 'मेरे पति' कहकर ही सम्बोधित किया है।

एक स्त्री की रचना में नायक पुरुष का चित्रण बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वही पात्र लेखिका के पुरुष सम्बन्धी विचारों का वाहक होता है। लेखिका नायक में किन गुणों को देखना चाहती है वह नायक के चित्रण से ही स्पष्ट होता है। मृणाल पाण्डे इस उपन्यास में कृष्णा के पति के चरित्र को और पल्लवित करतीं तो यह अधिक उपयुक्त होता और कृष्णा और उसके पति के बीच के सम्बन्धों की छानबीन के लिए हमें पर्याप्त जगह भी मिलती।

उपसंहार

मृणाल पाण्डे का उपन्यास साहित्य उनके नारीवादी चिंतन की तरह ही स्त्री को केन्द्र में रखकर चलता है लेकिन आश्चर्य का विषय यह है कि आलोचना में इनके उपन्यासों की चर्चा कम ही हुई है। उपन्यासों का आकार छोटा होते हुए भी वह अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं। कथानक आम जन–जीवन से ही लिए गये हैं जिसके कई उदाहरण हमें अपने आस–पास देखने को मिल जाएंगे। मृणाल पाण्डे ने अपने जीवनानुभवों को ही अपने उपन्यासों में कथानक के तौर पर चुना है। 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास 'आमा की स्मृति में' समर्पित है तो निश्चय ही आमा लेखिका के जीवन की ही कोई पात्र है जो स्मृति से कल्पना के रंग में रंगकर उपन्यास में आई है। 'अपनी गवाही' एक आत्मकथात्मक उपन्यास की तरह लगता है हालांकि उपन्यास लेखिका ने इसका कोई संकेत नहीं दिया है परन्तु उपन्यास को पढ़ते हुए मृणाल पाण्डे का अपना जीवन ही इसमें साकार होता हुआ प्रतीत होता है। अन्य उपन्यासों 'हमका दियो परदेश', 'देवी' और 'रास्तों पर भटकते हुए' सभी में उनके जीवन से सम्बन्धित सूत्र नज़र आते हैं।

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों की कुछ विशेषताएं ऐसी हैं जो उनके सभी उपन्यासों में मिलती हैं। पहाड़ों से लगाव इसमें सर्वप्रमुख है। कथानकों का परिवेश निर्मित करने में इसने मुख्य भूमिका निभाई है। पहाड़ का जन–जीवन, वहाँ के लोग, उनके रीति–रिवाज, अंधविश्वास, मान्यताएं, स्त्रियाँ उनके उपन्यासों का केन्द्र–बिन्दु बने हैं। 'पटरंगपुर पुराण' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। पटरंगपुर का समाज पहाड़ी समाज है। इस उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए उपन्यास लेखिका ने इसकी भाषा भी पहाड़ी हिन्दी रखी है जो सामान्य हिन्दी से बिल्कुल अलग है। पहाड़ी देशज शब्दों का प्रयोग सामान्य हिन्दी पाठक के लिए कठिन है यह सोचकर हर पृष्ठ पर नीचे उसका प्रचलित हिन्दी शब्द दे दिया गया है जिससे पहाड़ी हिन्दी का प्रवाह भी बना रह गया है और पूरे वाक्य के समझने में कठिनता नहीं आती। उपन्यास में प्रयुक्त कुछ देशज

शब्दों के उदाहरण हैं जो उपन्यास में प्रयुक्त हुए हैं– 'हकाहाक' (होहल्ला), 'भनकायी' (फेंकी), 'मुनकट्टा'(मस्तकहीन), 'क्याप्प'(जाने कौन?), 'वार–पार'(यहाँ से वहाँ), 'मातर'(अलबत्ता), 'अकार'(बख़ार), 'धिनाली' (गाय–बैल), 'चेली' (बेटी), 'चरयो' (मंगलसूत्र), 'बोक' (ढोना), 'घड़ा–बोज्यू' (भाभी), 'औली–न्यौली' (नवोढ़ा)।

पहाड़ी लोक–प्रचलित कहावतों और मुहावरों को भाषा में इस तरह से पिरोया गया है कि उपन्यास में भाषा का सौन्दर्य और निखरकर आया है तथा पहाड़ी स्त्रियों के (मन–मस्तिष्क की बनावट) जीवन का पता चलता है। लोक–प्रचलित कहावतों, मुहावरों का स्त्री के जीवन में विशिष्ट स्थान है। स्त्रियों की भाषा इनके बिना पूर्ण नहीं होती। ये उनकी भाषा को और अधिक चुटीला और धारदार बनाते हैं। कहावतों और मुहावरों के कुछ उदाहरण ध्यातव्य हैं–'चारा खा गए तीतर चकोर, फंदे में पड़ा मूरख चूहा', 'उपन(पिस्सू)मसलना', 'काला बामण गोरा शूद्र, इन्हें देख के काँपे रूद्र', 'समय होत बलवान', 'गोकुल की बेटी, मथुरा ब्याही' (एक–दूसरे की छिपी बातों की जानकारी होना), 'न अकास देखनी जैसी, न पताल हेरनी जैसी' आदि।

दूसरे उपन्यास 'अपनी गवाही' का परिवेश महानगरीय है अतः इसकी भाषा विशुद्ध हिन्दी प्रयुक्त हुई है। यह उपन्यास मूल रूप से अंग्रेजी में लिखा गया था अतः यह एक अनुदित रचना है। अरविन्द मोहन (अनुवादक) ने यथासंभव इसकी भाषा को हिन्दी का प्रकृति के अनुसार रखने की कोशिश की है जिससे मूलभाव को समझने में हमें कोई समस्या नहीं आती। उर्दू और अंग्रेजी के वे शब्द जो अब हिन्दी में प्रचलित हो चुके हैं उनका प्रयोग भी उपन्यास में किया गया है। उदाहरणस्वरूप–तस्वीरें, गुलदस्ता, निखालिस, नफासत, मुलम्मा, कैमरा, माइक, प्रोग्राम, बी.ए., टिकट–चेकर, स्टार्ट, टॉयलेट इत्यादि शब्द बहुतायत में प्रचलित हुए हैं।

मृणाल पाण्डे के सभी उपन्यासों में पहाड़ का जिक्र किसी न किसी रूप में अवश्य आया है। पहाड़ के प्रति उनका विशिष्ट लगाव अपना जन्म–स्थान होने के कारण आया है। पहाड़ की स्त्रियों की समस्याओं में उनका अकेलापन, आर्थिक अनिश्चितता और भौतिक संसाधनों की कमी ने उनके जीवन को और अधिक कठोर बनाया है। रोजगार की कमी के चलते पहाड़ी पुरुषों ने बड़े पैमाने पर वहाँ से पलायन

किया है जिसने वहाँ की स्त्रियों को अकेले घर–परिवार को चलाने पर मजबूर किया है। नौकरी न मिलने के कारण पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ भी बाहर जाकर संघर्ष करने के लिए मजबूर हुई हैं। 'पटरंगपुर पुराण' की सावित्री, गायत्री 'अपनी गवाही' की कृष्णा तथा 'रास्तों पर भटकते हुए' की मंजरी, पार्वती उदाहरणस्वरूप हैं। पति की मृत्यु और बेटों–बेटियों के बाहर चले जाने के बाद पहाड़ में अकेली बूढ़ी माँओं की स्थिति की मार्मिक अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में कई जगह हुई है। यही एकमात्र सम्बन्ध बाहर चले गए लागों को अपने जन्मस्थान से जोड़कर रखता है और जब यह सम्बन्ध भी टूट जाता है तब पहाड़ों से उनका रहा–सहा सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। अपने ही जन्मस्थान के प्रति पहाड़ी लोगों की बेरूखी ने इन समस्याओं को और अधिक बढ़ा दिया है।

पहाड़ी लोगों की निश्छलता, स्पष्टवादिता, भोलापन और उनकी निरीहता मृणाल पाण्डे को बहुत प्रभावित करती है और इनकी विशेषताओं को वह बहुत गर्वपूर्वक अपने उपन्यासों में अंकित करती हैं। कहीं–कहीं इसके अतिरेक में वह तुलनात्मक रूप से मैदानी इलाकों के लोगों का वर्णन वह बहुत ही सतही ढंग से कर बैठती हैं।

पत्रकारिता में बिताये लम्बे समय के अनुभव ने इनके कथानकों को एक नई विषय–वस्तु दी है। 'अपनी गवाही' और 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यासों में इस पेशे से जुड़ी हुई सच्चाईयों को सामने रखा गया है। अंग्रेजी मीडिया और हिन्दी मीडिया का आपसी द्वन्द्व, राजनीति और पत्रकारिता का गठजोड़ और इन सबके बीच में काम करती हुई स्त्री की स्थिति को इन उपन्यासों में दंखा जा सकता है। तथाकथित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वाहक और लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाने वाला यह पेशा किस तरह से सत्ता और बाजार से संचालित हो रहा है, इस सच को मृणाल पाण्डे ने अपने जीवन में नजदीक से देखा है और इसके नंगे यथार्थ को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है।

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों की स्त्री–पात्र सशक्त स्त्री की छवि को प्रस्तुत करते हैं। ये स्त्री–पात्र कहीं भी रोती–धोती निरीह प्राणी की नहीं दिखाई देती हैं। हिन्दी साहित्य में कई मायनो में महत्वपूर्ण हैं। अपनी उत्कट जीजिविषा और संघर्ष से वह

सदैव अपने स्त्री होने की नियति के खिलाफ विद्रोह करती हैं। 'पटरंगपुर पुराण' की लक्ष्मी, चंदा, भगवती, बरमदज्यू की घरवाली, चम्पा बुबू पारम्परिक ब्राह्मण परिवेश में पली–बढ़ी स्त्रियाँ हैं जिनमें स्त्री–चेतना का नितांत अभाव है परन्तु उनकी पारिवारिक स्थिति नगण्य नहीं है। वह कई–जगह निर्णायक की भूमिका में भी दिखाई देती हैं। आमा पुराने समय की महिला होते हुए भी आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान से अपना पूरा जीवन व्यतीत करती है और बेटों द्वारा उपेक्षित किये जाने के बावजूद अपनी और बच्चों की जिम्मेदारी उठाती है। अपने लिए बेटों से आश्रय माँगना उसके अपने सिद्धान्तों के ख़िलाफ है। 'अपनी गवाही' की कृष्णा भी अपनी शर्तों पर अपनी जिंदगी जीती है और कार्यस्थल व परिवार के द्वन्द्व के बावजूद हार नहीं मानती। वह संघर्ष कर उस ऊँचाई पर पहुँचती है जहाँ पहुँचना किसी भी स्त्री के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

इनके उपन्यासों की अन्य नारी पात्र मंजरी, लवलीन, जया, सावित्री, गायत्री ये सभी सशक्त स्त्रियाँ हैं जो समाज में पुरूष के समकक्ष अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। ये स्त्रियाँ अपनी अस्मिता पर उठाये गये सवालों का भी मुँहतोड़ जवाब देती हैं। सशक्त नारी छवि के बावजूद भारतीय सामाजिक संरचना में पुरूष की केन्द्रीयता के कारण स्त्रियों को अपने स्त्री होने की नियति से सदैव दो–चार होना पड़ता है। आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भरता स्त्री की पराधीनता की मुख्य वज़ह है किन्तु उपन्यासों की कुछ स्त्रियाँ आर्थिक रूप से निर्भर होते हुए भी पुरूष की विकृत मानसिकता के कारण शोषण का शिकार बन जाती हैं। कार्यस्थल पर दफ्तरों में महिला सहकर्मी की कार्यक्षमता के प्रति उपेक्षा और उदासीनता का भाव, कामुकता का प्रदर्शन और यौन–हिंसा स्त्री–शोषण के नये हथियार बन गये हैं जो स्त्री को 'सेकेण्ड सेक्स' होने की याद दिलाते रहते हैं और बाहर काम करने वाली कामकाजी स्त्री की चुनौतियों को और अधिक बढ़ा देते हैं परन्तु मृणाल पाण्डे ने स्त्री की नई पीढ़ी को ऊर्जा और अन्तःप्रेरणा से युक्त दिखाया है जो चुनौतियों को स्वीकार करने में सक्षम है।

मृणाल पाण्डे के आलोचनात्मक पुस्तकों और निबन्धों में 'परिधि की स्त्रियाँ' प्रमुख रूप से चिंतन के केन्द्र में है, लेकिन उनके उपन्यासों में उनकी उपस्थिति

लगभग न के बराबर है जो काफी आश्चर्यजनक बात लगती है। भारतीय समाज में दलित, आदिवासी और पिछड़े तबके की स्त्रियाँ अत्यधिक शोषण की शिकार हैं। गरीबी, भूखमरी और जहालत की जिंदगी ने उनके जीवन को उच्च–मध्यवर्गीय स्त्रियों के जीवन की अपेक्षा अधिक कठोर और संघर्षमय बना दिया है। इस वर्ग की स्त्रियों का चरित्र–चित्रण इनके उपन्यासों को और अधिक व्यापक बनाता और इनके सैद्धान्तिक स्त्री–चिंतन को व्यवहारिक रूप भी प्रदान करता। केवल एक–दो पंक्तियों में आया हुआ छिट–पुट वर्णन इस वर्गों की स्त्रियों की समस्याओं को सम्पूर्णता में नहीं उठा पाता। 'रास्तों पर भटकते हुए' की पार्वती इस वर्ग का प्रतिनिधित्व अन्य उपन्यासों में निम्नवर्गीय स्त्री पात्रों की अपेक्षा अधिक स्थान लेकर कर पाई है। अन्यथा अन्य उपन्यासों में चित्रण अत्यल्प है। स्त्री–विमर्श के समानान्तर इनके उपन्यासों की जांच–पड़ताल करते हुए निम्नवर्गीय स्त्रियों की बहुत कम उपस्थिति खटकती है।

मृणाल पाण्डे के सभी उपन्यासों में पुरूष पात्रों की भी यही स्थिति है। पुरूष पात्र उपन्यास में आये तो हैं, किन्तु उनमें से एक का भी चरित्र नायक के तौर पर विकसित नहीं हो पाया है। सभी उपन्यास स्त्री–प्रधान हैं। जितने भी पुरूष पात्र नायिका के पुरुषमित्र या पति हैं वह सहयोगी के रूप में ही चित्रित हुए हैं उत्पीड़क के रूप में नहीं। कुछ पात्र अवश्य उत्पीड़क की भूमिका में नजर आये हैं, लेकिन लेखिका ने उनके चरित्र को विस्तार नहीं दिया है। 'पटरंगपुर पुराण' का नरेन्द्र 'अपनी गवाही' में कृष्णा के पति, 'देवी' में ललिता मौसी के पति तथा 'रास्तों पर भटकते हुए' का पात्र पी.सी. कुछ ऐसे पुरुष पात्र हैं जो बतौर नायक प्रस्तुत किये जा सकते थे और इससे स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की व्याख्या भी विस्तृत फलक पर होती। ये पात्र नायिकाओं को अपना सहयोगी मानते हैं और उनके सुख–दुःख में एक सच्चे साथी की तरह उनका साथ निभाते हैं। वह पुरुषों की पुरुषवादी सर्वश्रेष्ठता की विचारधारा तथा मानसिकता के खिलाफ हैं न कि पुरुष–मात्र के। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बराबर की सहभागिता और सामंजस्य के प्रति उनकी निष्ठा स्त्री–पुरुष के बीच तमाम खाईयों को पाटकर उनके सम्बन्धों को एक नई ऊँचाई देती है जो पुरुषों के प्रति लेखिका के संतुलित दृष्टिकोण की परिचायक है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

आधार ग्रन्थ

पाण्डे, मृणाल : पटरंगपुर पुराण : राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38,
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 1983

पाण्डे, मृणाल : अपनी गवाही : राधाकृष्ण प्रकाशन
अनुवाद : अरविन्द मोहन
7/31,
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2010

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, रोहिणी : स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प : राजकमल प्रकाशन
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2011

अनामिका : पानी जो पत्थर पीता है : प्रकाशन संस्थान
4268/बी/3
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–2
संस्करण : 2012

अनामिका : स्त्रीत्व का मानचित्र : सारांश प्रकाशन, 142–ई, पॉकेट 4, मयूर विहार फेज–1, नई दिल्ली 110091

अरोड़ा, सुधा : आम औरत जिंदा सवाल : सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 110002, संस्करण– 2009

अज्ञेयः अपने अपने अजनबीः प्रगति प्रकाशन, मेरठ

आर्य, साधना एवं : नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं अन्य (सं.) मुद्दे : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्व. 10, केवेलरी लाइन, दिल्ली – 7, प्रथम संस्करण : 2001, तृतीय पुनमुर्द्रण; अक्टू.2010

इस्सर, देवेन्द्रः स्त्री मुक्ति के प्रश्न : संवाद प्रकाशन, आई–499, शास्त्रीनगर, मेरठ 250004 (उ. प्र.), प्रथम संस्करण, अक्टू. 2009

एक अज्ञात हिन्दू औरत : सीमंतनी उपदेश, सं. धर्मवीर : वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 2, पहला मूल संस्करण 1फर. 1882 को लुधियाने से, संस्करण – 2004, 2006

कस्तवार, रेखा : किरदार जिन्दा है : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2010

कस्तवार, रेखा : स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
नई दिल्ली–110002
वर्ष – 2009
संस्करण : 2 (पहली आवृति)
प्रथम प्रकाशन – 2006

कुमार, राधाः स्त्री संघर्ष का इतिहास : वाणी प्रकाशन
4695, 21–ए, दरियागंज
नई दिल्ली – 2
संस्करण 2002, 2005, 2009
आवृत्ति 2011

खेतान, प्रभाः उपनिवेश में स्त्री मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ : राजकमल प्रकाशन प
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2003
तीसरी आवृत्ति : 2010

खेतान, प्रभा : बाजार के बीच :बाजार के खिलाफ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न : वाणी प्रकाशन
4695, 21–ए, दरियागंज
नई दिल्ली – 2
संस्करण–2004 / 2007
आवृत्ति– 2010

गुप्ता, रमणिका : दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार ? : समीक्षा प्रकाशन
एक्स/3284 ए, स्ट्रीट नं. 4
रघुवरपुरा नं. 2
गाँधीनगर, दिल्ली – 31
संस्करण 2001

गुप्ता, सुनीता : स्त्री–चेतना के प्रस्थान–बिंदु : प्रकाशन संस्थान
4715/21, दयानन्द मार्ग
दरियागंज, न.दि.–2
प्र.सं. 2010

जोशी, गोपा : भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन
निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय 07
प्र.सं.2006

जोशी, रामशरण : मीडिया और बाजारवाद (संपादन) : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
जी0 17, जगतपुरी, दिल्ली 51
पहला संस्करण' 2002
पहली आवृत्ति–2004

जैन, अरविन्द : औरत अस्तित्व और अस्मिता : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2009
पहली आवृत्ति : 2013

जैन, अरविन्द : औरत होने की सजा : राजकमल पेपरबैक्स
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 1996
परिवर्द्धित संस्करण 2006

जैन, निर्मला : कथा–समय में तीन हमसफर : राजकमल पेपरबैक्स
1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 2011

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : बाणभट्ट की आत्मकथा : राजकमल पेपरबैक्स
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली – 2
पहला संस्करण 1984
पाँचवाँ संस्करण 1990
ग्यारहवीं आवृत्ति 2006
बारहवीं आवृत्ति 2008

दूबे, अभय कुमार : आधुनिकता के आइने में : वाणी प्रकाशन
4697/5, 21ए, दरियागंज
नई दिल्ली 2
संस्करण 2002

प्रेमचन्द : गोदान : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1बी, नेताजी सुभाष मार्ग
न.दि.2
पहला संस्करण 1988
तीसरा संस्करण 1990
आवृत्ति : 2007

प्रसाद, कमला एवं अन्य (सं.) : स्त्रीः मुक्ति का सपना : वाणी प्रकाशन
4697/5, 21ए, दरियागंज
नई दिल्ली 2
प्रथम संस्करण 2004
द्वितीय आवृत्ति 2009

पचौरी, सुधीश : भूमंडलीकरण और उत्तर–सांस्कृतिक : प्रवीण प्रकाशन
विमर्श
1/1079 ई, महरौली,
नई दिल्ली
संस्करणः 2003

पचौरी, सुधीश : साइबर स्पेस और मीडिया : प्रवीण प्रकाशन
1/1079 ई, महरौली,
नई दिल्ली
संस्करणः 2000

पण्डिता रमाबाई : हिन्दू स्त्री का जीवन : संवाद प्रकाशन
अनुवाद : जोशी, शम्भू
आई–499, शास्त्रीनगर
मेरठ,– 250004
प्रथम संस्करण : 2006

पाण्डे, मृणालः ओ उब्बीरी ... : राधाकृष्ण पेपरबैक्स
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2003
पहली आवृत्ति – 2006

पाण्डे, मृणाल : जहाँ औरतें गढ़ी जाती है : राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली–110002

पाण्डे, मृणाल : देवी : राधाकृष्ण प्रकाशन
समयातीत गाथाएँ स्त्री की
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज
अनुवाद : मधु बी. जोशी
नई दिल्ली–110002
पहला संस्करण : 1999
दूसरी आवृत्ति : 2007

पाण्डे, मृणाल : परिधि पर स्त्री	:	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2 पहला संस्करण 1996
पाण्डे, मृणाल : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी कहानी संग्रह (भाग एक)	:	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण, प्रथम 1990 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग न.दि.2
पाण्डे, मृणाल : बोलता लिहाफ (संपादित)	:	राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 2007 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2
पाण्डे, मृणाल :यानी की एक बात थी : कहानी संग्रह (भाग–दो)		राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण प्रथम, 1990 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2
पाण्डे, मृणाल : रास्तों पर भटकते हुए	:	राधाकृष्ण पेपरबैक्स राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2010

पाण्डे, मृणाल : स्त्री :देह की राजनीति से देश की राजनीति तक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –1987
दूसरा संस्करण–2002
तीसरा संस्करण–2011

पाण्डे, मृणाल : सम्पूर्ण नाटक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2011

पाण्डे, मृणाल :हमका दियो परदेश
अनुवाद : मधु बी. जोशी : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2011

पाण्डेय, मैनेजर : संकलित निबंध : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन,
5 इन्स्टीटयूशनलएरिया
फेज –2, वसंतकुँज, न.दिल्ली 70
पहला संस्करण – 2008
चौथी आवृत्ति – 2011

बोउवार, सीमोन द : स्त्री उपेक्षिता
अनुवाद– खेतान, प्रभा : हिन्द पॉकेट बुक्स
जे. 40, जोरबाग लेन
नई दिल्ली – 3
पहला संस्करण – 2002
दूसरी आवृत्ति – 2008

मधुरेश	: हिन्दी उपन्यास का विकास	:	लोकभारती प्रकाशन प्रा.लि. दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग,इलाहाबाद प्रथम संस्करण – 1998 द्वितीय संस्करण –2001 तृतीय संस्करण – 2004 चतुर्थ संस्करण – 2008
मिल, जॉन स्टुअर्ट अनुवाद – सक्सेना, प्रगति	: स्त्रियों की पराधीनता	:	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2 पहला संस्करण– 2002 दूसरी आवृत्ति – 2009
यशपाल	: दिव्या	:	लोकभारती प्रकाशन दरबारी बिल्डिंग, एम.जी. रोड इलाहाबाद – 1 विद्यार्थी संस्करण – 2008
यादव, राजेन्द्र	: आदमी की निगाह में औरत	:	राजकमल पेपरबैक्स 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, न.दि.2 पहला संस्करण– 2006 दूसरा परिवर्द्धित संस्क. 2007
यादव, राजेन्द्र एवं वर्मा, अर्चना (सं.)	: औरत : उत्तर कथा	:	राजकमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली –2 पहला संस्करण –2002 दूसरी आवृत्ति – 2013

यादव, राजेन्द्र एवं अन्य (सं.) : पितृसत्ता के नए रूप : राजकमल प्रकाशन
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2010

रत्तू, कमला : मीडिया क्रान्ति और महिलाएं : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज,
नई दिल्ली 110002
प्रथम संस्करण–2006

राय, गोपाल : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : राजकमल प्रकाशन
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2005
पहली आवृत्ति – 2009

राय, गोपाल : उपन्यास की संरचना : राजकमल प्रकाशन
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण 2012

राय, शशिकला : इस्पात में ढ़लती स्त्री : सामयिक प्रकाशन
3320–2, जटवाड़ा,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, न.दि.–2
संस्करण – 2008

वोल्स्टनक्राफ्ट, मेरीः स्त्री अधिकारों का औचित्य–साधन : राजकमल प्रकाशन
अनुवाद – मीनाक्षी
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली –2
पहला संस्करण –2005
पहली आवृत्ति – 2009

शर्मा, कुमुद : आधी दुनिया का सच : सामयिक प्रकाशन
3320–2, जटवाड़ा,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, न.दि.–2
संस्करण – 2011

शर्मा, जानकी प्रसाद : उपन्यास एक अंतर्यात्रा : यश पब्लिकेशनन्स
X/909, चाँद मौहल्ला
गाँधी नगर, दिल्ली – 31
संस्करण – 2010

शर्मा, नासिरा : औरत के लिए औरत : सामयिक प्रकाशन
3320–2, जटवाड़ा,
नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, न.दि.–2
संस्करण – 2011

शर्मा, क्षमा : स्त्रीवादी और साहित्य : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली – 2
पहला संस्करण – 2002
दूसरी आवृत्ति – 2002

सिंह, तेज : अंबेडकरवादी स्त्री चिंतन : 7/14, गुप्ता लेन
अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली – 2
प्रथम संस्करण – 2011

सिंह, नामवर : प्रेमचन्द और भारतीय समाज : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
त्रिपाठी, आशीष (सं.) 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली –2
प्रथम संस्करण –2010
पहली आवृत्ति – 2011
दूसरी आवृत्ति– मार्च,2011

सिंह, नामवर : सम्मुख :राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
त्रिपाठी, आशीष (सं.) 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली – 2
प्रथम संस्करण – 2012

पत्रिकाएँ :

आजकल, अंक, मार्च 2008, संपादक : सीमा ओझा (विशेषांक : स्त्री विमर्श : भारतीय संदर्भ में)

आलोचना, अंक, उन्नीस–बीस 2005, संपादक, नामवर सिंह (विशेषांक–आलोचना का उत्तर–समय)

आलोचना, अंक, बत्तीस, जनवरी–मार्च 2009, संपादक, नामवर सिंह

कसौटी, अंक 9, सम्पादक, नंदकिशोर नवल, प्रकाशन, पुनश्च

प्रगतिशील उद्भव, अंक, 5 जुलाई–सितम्बर 2011, अतिथि संपादक, शाहीना रिजवी, संपादक, उमेश चन्द्रा (विशेषांक–महिला सशक्तिकरण और चुनौतियाँ)